अन्नदाकल्पतन्त्रम्

एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२९७

अन्नदाकल्पतन्त्रम्

हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

एस० एन० खण्डेलवाल

सम्पादक

डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

साहित्य-ज्योतिष-आयुर्वेद-आचार्य

एम. ए., पी-एच. डी., डी. एस-सी.ए.

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १९९९ ई०

मूल्य ७५–००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : ३९५६३९१

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

मुद्रक

फूल प्रिण्टर्स

वाराणसी

निवेदन

अन्नदाकल्पतंत्र वास्तव में भगवती अन्नपूर्णा की साधना-विधि को निर्देशित करता है। सोम तथा अग्नि के पारस्परिक द्वन्द्व का द्योतन कराते इस विश्व में अन्नपूर्णा शक्ति सोमात्मक तथा पुष्टिदायिनी है। सोमाधिक्य से सृष्टि होती है तथा अग्नि का आधिक्य संहारात्मक है। सोम में स्थायित्व का संचार होने से 'स्थिति' होती है। यह सृष्टि तथा संहार की मध्यवर्त्तिनी सत्ता है। 'स्थिति' में ही आनन्द का आस्वादन तथा पुष्टिवर्धन कार्य सम्पादित होता है। 'स्थिति' का अर्थात् सोम के स्थायित्व का संचार भगवती अन्नपूर्णा के प्रसाद से हो सकना संभव है। अन्न ही सोम है। प्रकारान्तर से जिस सत्ता, आयाम अथवा स्थिति का जो अन्न है, जो उस सत्ता, आयाम अथवा स्थिति का पुष्टिवर्धन करता है, वही उसका सोमांश भी है। इस अन्न अथवा सोम से उस सत्ता, आयाम अथवा स्थिति को पूर्ण कर देने वाली चित् शक्ति को ही अन्नपूर्णा रूप से स्मरण किया जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम पटल से लेकर षोडश पटल तक जिस साधना का क्रमिक अथवा सोपानक्रम से वर्णन किया गया है, उसके अनुशीलन से अन्तर्जगत् तथा बाह्यजगत् दोनों में ही सोमरूपी स्थायित्व की प्राप्ति होती है। अर्थात् आन्तरिक भावात्मक सत्ता भावमयी भगवती अन्नपूर्णा के क्रोड में उपस्थित हो जाती है। इससे साधक एक साथ ऐहिक एवं आमुष्मिक, भोग एवं मोक्ष का आस्वादन प्राप्त करने लगता है।

इस गंथ के सत्रहवें पटल से इक्कीसवें पटल पर्यन्त विविध लोकहितकारक प्रयोग दिये गये हैं। किसी भी साधक की लौकिक अथवा निम्नभूमिक वृत्तियों का परिवेश उसके लिए जागतिक समस्याएँ उत्पन्न कर देता है, जिसका निराकरण षट्कर्म द्वारा किया जा सकता है। हारीतोक्त ज्वरहरण विधि प्रभृति पटल मूल ग्रंथ में कालान्तर में नियोजित किये गये हैं, यह प्रतीत होने पर भी उनकी लोककल्याणपरक उपयोगिता को देखते हुए उन्हें अनुवाद काल में यथावत् ग्रंथ के साथ ही रहने देना उचित-सा लगता है।

इस ग्रंथ का सम्पादन करके पूज्य पं० ब्रह्मानन्द त्रिपाठीजी ने इस प्रस्तुति को अधिकाधिक शुद्ध तथा त्रुटिरहित किया है, जिसके लिए मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता का ज्ञापन करता हूँ।

बुद्धपूर्णिमा, १९९८ ई०
बी ३१।३२ लंका, वाराणसी

एस० एन० खण्डेलवाल

॥ श्रीः ॥

अन्नदाकल्पतन्त्रम्

प्रथमं पटलम्

ॐ नमः परमदेवतायै

नित्यानन्दमयीं सदाशिवमनः-सम्मोहिनीं चित्कलां,
संसारार्णवतारिणीं त्रिजगतामुत्पत्तिमूलाश्रयाम् ।
ध्यानज्ञाननिदानहेतुविभवां ब्रह्मादिभिः सेविताम्,
भूतानां परिपालनाश्रयतमां तामन्नपूर्णां श्रये ॥

अपने नित्य आनन्द से आनन्दमयी, सदाशिव से लेकर तृण पर्यन्त सभी के चित्त पर प्रभुत्व रखने वाली, ध्यान, धारणा तथा ज्ञान से प्रत्यक्ष होने वाली सुखोपास्या, संसार रूपी समुद्र से पार कराने वाली तीनों जगत् की उत्पत्ति करने वाली ब्रह्मा आदि से सेविता, सर्वभूतों (जीवों) की प्रतिपालिका तथा आश्रयदायिनी भगवती माहेश्वरी अन्नपूर्णा के चरणों का हम आश्रय लेते हैं ।

श्रीभैरव उवाच

शैवानि ! गाणपत्यानि सौराणि वैष्णवानि च ।
शाक्तानि मन्त्रजातानि श्रुतानि बहुशस्तव ॥
कल्पानि चैषामन्यानि कथितानि त्वया मम ।
कथयस्वान्नदाकल्पं यदि तेऽस्ति दया मयि ॥ १ ॥

श्रीभैरव कहते हैं— हे शिव ! आपकी कृपा से आपके मुखकमल से विनिर्गत शैव, गाणेश, सौर, वैष्णव तथा शाक्त मन्त्र, कल्पशास्त्र तथा निगमादि का मैंने श्रवण किया । आप मुझ पर कृपा करके अन्नदा कल्प का प्रकाशन करें ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच—

शृणु पुत्र ! परानन्द ! परापरविभागवित् ।
परमार्थरसाविष्ट ! परमब्रह्मभैरव ॥ २ ॥

श्रीशिव कहते हैं— हे पुत्र, परम ब्रह्मभैरव ! तुम परमार्थ रस के रसिक

हो, ब्रह्मानन्द तथा भोगानन्द के पारस्परिक भेद से अवगत हो। अतः तुम अधिकारी हो। तुम देवी तत्व को सावधान चित्त से सुनो।

विनान्नेन न कुत्रापि सृष्टिस्थित्यादि जायते।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि इति चाथर्वणी श्रुतिः ॥ ३ ॥
यदि त्वं सृष्टिकर्त्ता स्याः सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्।
नित्यं भगवतीं मायां भजस्वान्नप्रदां भवेत् ॥ ४ ॥

अन्न के बिना संसार में सृष्टि तथा पालनादि कार्य नहीं होता। अथर्ववेद ने अनेक बार कहा है कि अन्न से जीव जगत् की उत्पत्ति होती है। अन्न का परिणाम है रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र जिससे देह का संगठन होता है। हे भैरव! यदि सृष्टि स्थिति आदि जगत् कार्य सम्पादन की तुम्हारी कामना है, तब सृष्टि-स्थिति-प्रलय करने वाली भगवती अन्नप्रदायिनी महामाया की सेवा करो ॥ ३–४ ॥

रूपाणि बहुसङ्ख्यानि प्रकृतेः सन्ति यद्यपि।
अथाप्यन्नप्रदारूपं मम प्राणप्रदायकम् ॥ ५ ॥

यद्यपि भगवती महामाया के अनेक रूप हैं तथा अनेक मूर्त्तियाँ हैं, तथापि यह अन्नप्रदा मूर्त्ति प्राणप्रदात्री होने के कारण मुझे अतिप्रिय है ॥ ५ ॥

मृत्युञ्जयोऽहं यदि वा तत् पादाब्जप्रसादतः।
जीवामि परमेशानः सर्वज्ञः सर्वतत्ववित् ॥ ६ ॥

मैंने जो मृत्यु पर जय प्राप्त किया है अथवा मुझे तत्वज्ञान तथा सर्वज्ञता प्राप्त है, यह भी उनके ही चरण कमलों का प्रसाद है ॥ ६ ॥

निर्गुणः सगुणश्चेति शिवोऽहं द्विविधः परः।
निर्गुणश्च तया हीनः सगुणोऽहं तया सह ॥ ७ ॥

शिव नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म सगुण तथा निर्गुण द्विविध है। उन (महामाया) के साथ ब्रह्म सगुण हो जाते हैं। उनका परित्याग करने से शिव निर्गुण (शववत्) हो जाते हैं ॥ ७ ॥

सृजामि पालयामीति संहरामि पुनः पुनः।
सच्चिदानन्दविभवः प्रकृतिः कारणं मम ॥ ८ ॥

सच्चिदानन्द विभूति रूप मैं ब्रह्म रूप से सृष्टि करता हूँ, विष्णु रूप से पालन करता हूँ। रुद्र रूप से संहारकार्य करता हूँ। इन सबकी प्रेरक भगवती महामाया मूल प्रकृति को जानो ॥ ८ ॥

तस्मात्तु प्रकृतेर्मूलं कारणं नैव दृश्यते।
निर्गुणा सगुणा द्वेधा सगुणा सा त्रिधा मता ॥ ९ ॥

वे ईश्वरी हैं। उनका प्रेरक तथा ईश्वर कोई नहीं है। वे उपासकों की रुचि के भेद से सगुण या निर्गुण हो जाती हैं ॥ ९ ॥

सात्विकी द्विभुजा सौम्या मूर्त्तिर्यस्या प्रकीर्त्तिता।
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ १० ॥

उनकी सात्विक, राजस तथा तामस, ये तीन मूर्त्तियाँ हैं। सात्विकी मूर्त्ति द्विभुजा तथा सौम्या हैं, उसके बारे में तुम सुनो ॥ १० ॥

तासां कारणभूतेयमन्नदा पररूपिणी।
परापरविभागेन द्विविधा सा पुनर्भवेत् ॥ ११ ॥
परासप्तदशी ख्याता अपराष्टादशी मता।
परापरा षोडशीयं तयोराश्रयरूपिणी।
चित्कलेयं समासेन कथिता तव सुव्रते ॥ १२ ॥

परा-अपरा तथा परापरा भेद से विद्यारूपिणी अन्नदा भगवती पुनः त्रिविधा हैं। सप्तदशाक्षरी विद्या परा, अष्टादशाक्षरी विद्या अपरा तथा षोडशी-(१६ अक्षरों वाली=षोडशी) विद्या परापरा है। मैंने तुमसे चैतन्यमयी देवी के रहस्य को संक्षेपतः कहा ॥ ११–१२ ॥

श्रीभैरव उवाच

ज्ञानरूपा तु परमा त्वया प्रोक्ता महेश्वरी।
ज्ञेयरूपतया भूयः कथ्यतां यदि मे कृपा ॥ १३ ॥

श्रीभैरव कहते हैं—महेश्वरी ज्ञान रूपा हैं, अब यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है तो यह कहिये कि उन्हें कैसे जाना जा सकेगा ॥ १३ ॥

श्रीशिव उवाच

ज्ञानरूपा च प्रकृतिर्मन्त्रतन्त्रार्थगोचरा।
श्रीगुरोः कृपया सा तु ज्ञेया भवति नान्यथा ॥ १४ ॥

श्रीशिव कहते हैं—वेद तथा आगम आदि मूल प्रकृति महामाया का वर्णन ज्ञानरूपा रूप से करते हैं। श्रीगुरुकृपा के बिना उन्हें जाना नहीं जा सकता ॥ १४ ॥

कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैः सद्गुरुर्यदि लभ्यते।
तदा ज्ञेया भवेदेषा नान्यथा कल्पकोटिभिः ॥ १५ ॥

अनेक जन्म के सुकृत के फलों से यदि सद्गुरु का चरण प्राप्त होता है, तब ही भगवती महामाया को जाना जा सकेगा। गुरु के चरण का आश्रय लिए बिना करोड़ों कल्प में भी उन्हें प्राप्त कर सकना संभव नहीं है ॥ १५ ॥

गुरवो बहवः सन्ति मन्त्रतन्त्रार्थगोचराः ।
दिव्यौघाश्चैव सिद्धौघा मानवौघा क्रमाद्विदुः ॥ १६ ॥
दिव्या वसन्ति खे नित्यं सिद्धा भूमाविहापि च ।
मानवौघा मनुष्येषु मम रूपधराः शिवाः ॥ १७ ॥

मन्त्र-तन्त्र को जानने वाले बहुत से गुरु हैं। उनके तीन क्रम हैं— १. दिव्यौघ, २. सिद्धौघ तथा ३. मानवौघ। दिव्यौघ गुरु आकाशमार्गी होते हैं। सिद्धौघ गुरु पर्वत आदि जनशून्य स्थान में या स्वर्ग में निवास करते हैं। मानवौघ गुरुगण साक्षात् शिवरूपी होकर मनुष्यों के बीच गुप्त रूप से रहते हैं ॥ १६–१७ ॥

मनुष्येषु च सर्वेषु ब्राह्मणो गुरुरुच्यते ।
तत्रापि शास्त्रवेत्ता स्याच्छ्रेष्ठस्तस्मात्तु तत्ववित् ॥ १८ ॥

ब्राह्मण सबका गुरु है, साधारण ब्राह्मण से शास्त्र जानने वाला गुरु श्रेष्ठ होता है और उससे भी श्रेष्ठ है तत्वज्ञानी ॥ १८ ॥

उद्धर्त्तुञ्चैव संहर्त्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः ।
तत्वज्ञो मन्त्रतन्त्राणां मम वेत्ता रहस्यवित् ॥ १९ ॥
पुरश्चरणकृत् सिद्धः सिद्धो मन्त्रप्रयोगवित् ।
दाता दान्तः शान्तमना नितान्तं शान्तविग्रहः ।
अध्यात्मविद् ब्रह्मचारी कुलीनो गुरुरुच्यते ॥ २० ॥

वह तत्वज्ञ ब्राह्मण श्रेष्ठ है, क्योंकि वह निग्रह एवं अनुग्रह करने में समर्थ होता है। जिन्हें शास्त्र का रहस्य ज्ञात है और जिन्होंने पुरश्चरण से मन्त्र सिद्धि प्राप्त की है, जिन्हें मन्त्र के प्रयोग का ज्ञान है, जो मननशील, दानशील, संयत इन्द्रिय, प्रशान्त चित्त, आत्मज्ञान युक्त ब्रह्मचारी तथा कुलीन हैं, वे ही गुरु होने योग्य हैं ॥ १९–२० ॥

विष्णुर्विष्णुमतां श्रेष्ठः सौरः सौरविदाद् वरः ।
गाणपो गणनाथानां गणदीक्षाप्रवर्त्तकः ॥ २१ ॥
शैवाः शाक्ताश्च सर्वत्र सर्वदीक्षाप्रवर्त्तकाः ।
कुलीनः सर्वतन्त्राणामधिकारी तु गीयते ॥ २२ ॥
दीक्षा प्रभुः स एवात्मा सर्वमन्त्रस्य नापरः ।
एवं सद्गुरुमाश्रित्य साधयेत् स्वमनोरथान् ॥ २३ ॥

वैष्णव के लिए वैष्णव गुरु, सौर के लिए सूर्योपासक गुरु, गाणपत्य के लिए गाणप गुरु ही उत्तम एवं उपयुक्त है, परन्तु कुलीन (कुलपूजोपासक) शैव तथा शाक्त गुरु सबको दीक्षा दे सकते हैं। सभी प्रकार की दीक्षा देने के

अधिकारी हैं। इस प्रकार से सद्गुरु का आश्रय लेकर अपनी कामनाओं की सिद्धि करे ॥ २१–२३ ॥

सच्छिष्यलक्षणं वक्ष्ये श्रूयतां ब्रह्मभैरव !।
शान्तो विनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान् धारणक्षमः ॥
समर्थश्च कुलीनश्च प्राज्ञः सच्चरितो यतिः।
इत्यादिगुणसम्पन्नः सच्छिष्योऽन्यस्तु दुःखदः ॥ २४ ॥

अब शिष्य लक्षण कहता हूँ, हे ब्रह्मभैरव उन्हें सुनो ! जो शान्त, विनीत, शुद्धात्मा, श्रद्धावान्, गुरु के उपदेश को धारण करने वाला, समर्थ, कुलीन, बुद्धिमान् सच्चरित्र तथा यति है वे ही शिष्य हो सकते हैं। अन्य को शिष्य बनाना गुरु को दुःख देता है ॥ २४ ॥

शिष्यः शुभेऽह्नि स्नात्वाथ सम्पूज्य गणनायकम् ।
सूर्यं विष्णुं शिवं दुर्गां वाणीञ्च कमलालयाम् ॥
मातरं पितरं नत्वा तयोराज्ञानुसारतः।
धर्मार्थकाममोक्षार्थी सच्छिष्यो गुरुमाश्रयेत् ॥ २५ ॥

सत् शिष्य को शुभ दिन में स्नानादि करके गणपति, सूर्य, विष्णु, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती की पूजा करके माता-पिता को प्रणाम करके उनकी अनुमति से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्ति हेतु गुरु का आश्रय लेना चाहिए ॥२५॥

गुरुश्चात्मविशुद्धयर्थं देयमन्त्रं विशोधयेत्।
जननं जीवनं पश्चात् ताडनं रोधनस्तथा ॥
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायनं पुनः।
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रिया ॥ २६ ॥

गुरु पहले आत्मशुद्धि तथा मन्त्र की शुद्धि करें, जिसका उपदेश शिष्य को देना है। मन्त्र की ताड़न, रोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन, जनन, जीवन तथा गोपन रूपी दस क्रियाओं से मंत्र संस्कार करें ॥२६॥

मन्त्राणां मातृकामध्यादुद्धारो जननं स्मृतम् ।
प्रणवान्तरितान् कृत्वा मन्त्रवर्णान् जपेत् सुधीः ॥
प्रत्येकं वाथ दशधा जीवनं तदुदाहृतम् ।
मन्त्रवर्णान् समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा ॥
प्रत्येकं वायुबीजेन दशधा ताडनं मतम् ।
विलिख्य पूर्ववन्मन्त्रं प्रसूनैः करवीरजैः ॥
तन्मन्त्रवर्णसङ्ख्यातैर्हन्याद् रेफेन रोधनम् ।
अश्वत्थपल्लवैः सिञ्चेत् मन्त्री मन्त्रार्णसङ्ख्यया ॥

स्वतन्त्रोक्तविधानेन अभिषेकोऽयमीरितः ।
सञ्चित्य मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत् ॥
तारं व्योमाग्निमनुयुग्दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः ।
कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मनोः ॥
तेन मन्त्रेण विधिवद्देवताप्यायनं मतम् ।
तारामायारमा योगो मनोर्दीपनमुच्यते ॥
जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनत्वप्रकाशनम् ।
संस्कृत्यैवं विधानेन ततो दीक्षां प्रदापयेत् ॥ २७ ॥

मातृका या वर्णमाला से मन्त्रोद्धार करना ही मन्त्र का जनन है। प्रथम ॐ का उच्चारण करके पश्चात् देय मन्त्र के (गुरु दत्त मन्त्र के) प्रत्येक अक्षर का उच्चारण करना जीवन है। मन्त्र वर्ण को चन्दन द्वारा ताम्र आदि पात्र में लिखकर वायु बीज 'यं' द्वारा दस बार चन्दन के पानी से प्रोक्षण करके ताड़न करना ही ताड़न है। करबीर (कनेर) पुष्प द्वारा मन्त्र की वर्ण संख्या के अनुसार पुष्पों को वर्णावली रूप से श्रेणी बद्ध करके 'रं' बीज द्वारा हनन करना ही रोधन है। मन्त्र वर्ण की जितनी संख्या है उतने पीपल के पत्तों पर जल छिड़क कर (भोज पत्र पर) लिखे मंत्र पर इन पत्तों द्वारा जल छिटकना अभिषेक है। मन ही मन ज्योति मन्त्र द्वारा (ह्रौं) अपने मन्त्र को आवृत्त करने का चिन्तन करना ही मन्त्र का विमलीकरण है। गुरुदत्त मन्त्र के प्रत्येक वर्ण को कुश से धुलाये गये जल के द्वारा प्रोक्षण करने से आप्यायन होता है। मन्त्र पूत जल से तर्पण करना मन्त्र तर्पण है। ॐ ह्रीं श्रीं के साथ गुरुदत्त मन्त्र को संयुक्त करना ही दीपन है। जप काल में कपड़े की बनी गोमुखी में मन्त्रमयी माला से जप करना ही मंत्र का गोपन है। इस प्रकार मन्त्र के दस संस्कार करने के अनन्तर दीक्षा प्रदान करे ॥ २७ ॥

विचार्य विधिवद्विद्वान् सिद्धादीन् क्रमयोगतः ।
हरचक्रं षड्दलतः सिद्धादिचक्रमेव च ॥
राशिलक्षणचक्रे च कुलाकुलमतः परम् ।
अकडमश्चाकथहं वर्गचक्रं तथैव च ॥
उक्तानि नव चक्राणि मन्त्रसिद्धिकराणि च ।
नवचक्रविशुद्धात्मा मनोऽभीष्टाय कल्प्यते ॥
उपासिता यदि भवेत् शिष्यैस्त्रिपुरुषैः क्रमात् ।
तदा तद्ग्रहणे धीरो विचारं नैव कारयेत् ॥ २८ ॥

दीक्षा देने के पूर्व सिद्धादि का क्रम, हरचक्र, षट्दलचक्र, सिद्धादिचक्र, राशिचक्र, लक्षणचक्र, कुलाकुलचक्र, अकडमचक्र, अकथहचक्र तथा वर्गचक्र का विचार करे। यह चक्र विचार मन्त्र सिद्धि देने वाला है। तीन पुरुषों द्वारा

(पुरखों द्वारा) उपासित के मन्त्र ग्रहण में किसी भी विचार का कोई प्रयोजन नहीं है ॥ २८ ॥

भर्त्तुर्मन्त्रन्तु वनिता श्रयेद्भाग्यवशाद् यदि।
तदा भर्त्तुर्विचारेण विचारोऽस्या न तु स्वतः ॥ २९ ॥

यदि पत्नी भाग्यवशात् स्वामी से मन्त्र प्राप्त करती है, तब स्वामी के विचार से ही उसका कार्य सिद्ध होता है। उसे अपना अलग से श्लोक २८ में अंकित विचार नहीं करना चाहिए ॥ २९ ॥

कुलचक्रे समुत्पन्ने वीरान्माहेश्वरीमुखात्।
कृपया दीयमानस्य विचारो नात्र कुत्रचित् ॥ ३० ॥

चक्रानुष्ठान में चक्रेश्वर या चक्रेश्वरी यदि दया करके चक्र में अदीक्षित व्यक्ति को दीक्षा दे देते हैं, तब किसी विचार का प्रयोजन नहीं है ॥ ३० ॥

अन्तःकरणवृत्तौर्वा यत्र श्रद्धा गरीयसी।
सैवोपास्या प्रयत्नेन विचारस्तत्र निष्फलः ॥ ३१ ॥

और जिस मन्त्र या देवता के प्रति अनुराग स्वयं ही है, वहाँ उस देवता या मन्त्र की उपासना हेतु किसी विचार का प्रयोजन नहीं है ॥ ३१ ॥

यस्या मतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥
इति वेदस्य वाक्यार्थः सङ्क्षेपात् कथितो मया।
श्रद्धया जायते सिद्धिरिहलोके परत्र च ॥ ३२ ॥

जो शाक्त सिद्धान्त मानते हैं, वे व्यक्ति उसके अनुकूल हैं और जो उसके मत को नहीं जानता, वह यदि अन्य उपासना को जानता भी है, तो वह इस मार्ग में अज्ञानी है। ऐसा वेद का आशय है। इसे मैंने संक्षेप से कह दिया है। उपासना में सिद्धि श्रद्धा से होती है चाहे इस लोक में हो अथवा परलोक में हो ॥ ३२ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रद्धावान् भव सुव्रत !।
श्रद्धया जायते भक्तिर्भक्त्या तामितिनिश्चितम् ॥ ३३ ॥

इत्यन्नदाकल्पतन्त्रे प्रथमं पटलम्।

हे सुव्रत ! समस्त प्रयत्नों द्वारा सर्वप्रथम श्रद्धावान् बनो। श्रद्धा से भक्ति आविर्भूत होती है और भक्ति द्वारा उपास्य वस्तु प्राप्त होती है, यह निःसंदिग्ध है ॥ ३३ ॥

॥ प्रथम पटल समाप्त ॥

द्वितीयं पटलम्

श्रीब्रह्मभैरव उवाच

दीक्षाविधानं परमं कथयस्व मयि प्रभो!।
येनान्नदा प्रसन्ना स्यात् चतुर्वर्गादिदायिनी ॥ १ ॥

ब्रह्मभैरव कहते हैं—हे प्रभु अब आप अत्यन्त सुखप्रद दीक्षा विधान का वर्णन करिये। जिसकी दीक्षा ग्रहण करने से चतुर्वर्ग देने वाली अन्नपूर्णा प्रसन्न होती हैं ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

गोशालायां गुरोर्गेहे दुर्गागारे विशेषतः।
बिल्वमूले नदीतीरे पर्वते शिवसन्निधौ।
स्वगृहे शून्यनिलये तथा साधकमन्दिरे ॥
श्रीदुर्गा प्रतिमास्थाने युवतीनाञ्च सन्निधौ।
एवमादिषु देशेषु दीक्षा कर्मं प्रशस्यते ॥ २ ॥

श्रीशिव कहते हैं—गोशाला, गुरु के गृह, दुर्गामण्डल, बिल्ववृक्ष का मूल देश, नदीतीर, पर्वत, शिवमन्दिर, अपने गृह, जन शून्य गृह, साधकों का स्थान, दुर्गा प्रतिमा तथा युवती रमणीवर्ग के पास दीक्षा दान प्रशस्त होता है ॥ २ ॥

सुतिथौ सुमूहूर्त्ते च शुभलग्ने शुचिस्थले।
मण्डले सर्वतोभद्रे कलशं स्थापयेद्बुधः ॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं मार्त्तीकं वा स्वशक्तितः।
पूरयेत् कलशं मन्त्री मूलेनैव प्रयत्नतः ॥
सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदं मतम्।
ताम्रं प्रीतिकरं ज्ञेयं मार्तिक्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥
क्षीरद्रुमकषायेण पलाशत्वग्भवेन च।
अन्नोद्भवेन तीर्थेन रक्तवर्णेन देशिकः।
पूरयेत् कलशं मन्त्री मातृकामूलमुच्चरन् ॥ ३ ॥

गुरु शुभलग्न तथा शुभ मूहूर्त्त में शिष्य की शक्ति के अनुरूप मृत्तिका, ताँबा, चाँदी अथवा स्वर्ण निर्मित कलस को सर्वतोभद्र मण्डल के ऊपर स्थापित करे। सोने का कलश भोगप्रद, चाँदी का मोक्षप्रद, ताम्र का प्रीति कर तथा मिट्टी का पुष्टिवर्द्धक होता है। वटादि वृक्ष के कषाय से, पलाश की

छाल से निकले कषाय रस युक्त, रक्तवर्ण अन्न जात तीर्थं (मद्य) से कलस को पूर्ण करे। पूर्ण करते समय मातृका एवं मूल मंत्र का उच्चारण करता रहे ॥ ३ ॥

मण्डले कलशे द्रव्ये वह्न्यर्कशशिमण्डले।
पूजयेद् विधिवद्विद्वानाधारादिकलान्वितान् ॥ ४ ॥

तदनन्तर मण्डल, कलस एवं उसमें स्थित द्रव्य में आधारादि शक्ति, सूर्य तथा वह्नि की भावना करके कलस का पूजन करे ॥ ४ ॥

एकमेवादिभिर्मन्त्रैः काव्यशापादिमोचनम्।
हंसमन्त्रेण मन्त्रज्ञो मूलमष्टशतं ततः ॥ ५ ॥

तदनन्तर 'एकमेव परंब्रह्म स्थूल सूक्ष्ममयं ध्रुवं' आदि मन्त्रों का पाठ करके ब्रह्मशाप, शुक्राचार्य का अभिशाप तथा कृष्णशापमोचन मन्त्र का पाठ करे। तदनन्तर 'हंसः शुचि सद्वसुरन्तरीक्षं' प्रभृति वेद मंत्र का तथा इष्टदेव के मूल मंत्र का १०८ बार पाठ करके द्रव्य शोधन करे ॥ ५ ॥

जप्त्वा संशोधनं कृत्वा पञ्चसुरद्रुमैस्ततः।
चषकं तत् फलाकारं स्थापयेत् पल्लवोपरि ॥
कृत्वा कल्पोदितान् न्यासान् तत्रावाह्य महेश्वरीम्।
पूजायित्वागमोक्तेन मूलमष्टशतं जपेत् ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् कलस के मुख पर आम आदि के पंच पल्लवों और उसके ऊपर एक फल रखते हुए यथाविधि न्यास करके माहेश्वरी का आवाहन, पूजन तथा १०८ बार जप करना चाहिए ॥ ६ ॥

ततः स्वदक्षिणे मन्त्री स्थापयित्वा हुताशनम्।
साज्येनान्नेन जुहुयात् पायसेनाथ सर्पिषा ॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा वह्नेरुद्वास्य देवताम्।
कलशाग्रे समाधाय तयोरैक्यं विचिन्तयेत् ॥ ७ ॥

तत् पश्चात् उपासक अपनी दाहिनी ओर विधिवत् अग्निस्थापन करके वह्नि देवता तथा उपास्य देवता का उद्वासन कर्म करके उसके सामने कलश को स्थापित करके घृत मिश्रित अन्न से अथवा घृत मिश्रित खीर से १०८ बार हवन करे। इस काल में अग्नि देवता तथा उपास्य देवता का समान रूप से ध्यान करे ॥ ७ ॥

ततः शिष्यं समाहूय षडङ्गपरिशोधनम्।
कृत्वा न्यासान् प्रकुर्वीत ऋष्यादीन् कल्पसंगतान् ॥

आच्छाद्य नेत्रे वस्त्रेण गन्धपुष्पैश्च तत्करौ।
पूरयित्वा गुरुर्धृत्वा मूलेन कलशे क्षिपेत् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् शिष्य को अपने पास बुलाकर उसके अंगों में षडङ्गन्यास आदि कराकर उसके नेत्रों को वस्त्र से ढक देना चाहिए। अब उसे गंध पुष्प की पुष्पांजलि कलस पर चढ़ानी चाहिए। उस समय उसकी अंजली गुरु पकड़े रहें तब शिष्य पुष्पांजलि दे ॥ ८ ॥

त्रिवारञ्च ततो नेत्रबन्धनं मोचयेत् पुनः।
चषकं तीर्थसम्पूर्णं नीत्वा तत्कलशाद् गुरुः।
कल्पद्रुमफलं तत्र शिष्यहस्ते निधापयेत् ॥
शाखाभिः पञ्चभिः पश्चान्मूलमन्त्रं समुच्चरन्।
अभिषिञ्चेच्छिशुं मूर्ध्नि कलशोत्थेन वारिणा ॥ ९ ॥

इस प्रकार से तीन बार पुष्पांजलि देने के उपरान्त शिष्य नेत्रों पर बांधा कपड़ा गुरु को खोल देना चाहिए। अब शिष्य की अंललि में गुरु को कलस के ऊपर रक्खा फल और एक जल पूर्ण चसक रखना चाहिए (अर्थात् शिष्य को उक्त दो वस्तु प्रदान करना चाहिए)। इसके पश्चात् पंचपल्लव द्वारा कलश से तनिक-तनिक जल लेकर शिष्य का अभिषेक करना चाहिए ॥ ९ ॥

मन्त्राणंसङ्ख्यया मन्त्री तन्मूर्ध्नि दक्षिणं करम्।
दत्त्वा कर्णे वदेद्विद्यां ऋषिच्छन्दः समन्विताम्।
त्रिवारमष्टवारं वा प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ १० ॥

अब गुरु को प्रसन्न चित्त होकर शिष्य के मस्तक पर दाहिना हाथ रखकर मन्त्र वर्ण की संख्या के अनुसार देय मन्त्र का जप करके शिष्य के कानों में ऋषि छन्द का उच्चारण करने के अनन्तर उसी देय मन्त्र का तीन बार अथवा आठ बार उच्चारण करना चाहिए ॥ १० ॥

आवयोस्तुल्यफलदो भवत्विदमुदीरयन् ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् गुरु यह कहें कि इस मन्त्र दान तथा मन्त्र ग्रहण से गुरु तथा शिष्य दोनों को समान फल प्राप्त हो ॥ ११ ॥

ततः श्रीगुरुपादाब्जं दण्डवत् प्रणमेच्छिशुः।
त्राहि नाथ कुलाचारपद्मिनीपद्मनायक !।
तत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि यशोधनम् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् 'त्राहि नाथ से लेकर यशोधनम्' तक इस श्लोक को पढ़ते हुए शिष्य को चाहिए वह गुरु के चरणों में शिशु के समान गिरकर प्रणाम करे ॥ १२ ॥

ततश्च सद्गुरुः शिष्यमुत्थाप्य वचनं वदेत् ।
उत्तिष्ठ वत्स ! मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव ।
कीर्त्तिः श्रीः कान्तिमेधायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते ॥ १३ ॥

अब गुरु शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर उसे उठाते हुए कहे 'वत्स ! तुम उठो । तुम पशुपाश से मुक्त हो गये हो । अब आचार पालन का अभ्यास करो । सदा कीर्त्ति, श्री, कान्ति, आरोग्य, मेधा, दीर्घायु तथा सामर्थ्य का लाभ करो ॥ १३ ॥

गुरोश्छायानुसारी स्यात् त्रिदिनं निकटे वसेत् ।
नोचेत् सञ्चारिणी शक्तिर्गुरुमेति न संशयः ॥ १४ ॥

इस प्रकार दीक्षा प्राप्त कर शिष्य तीन दिन तक गुरु के पास ही रहेगा । अन्यथा संचारिणी शक्ति अपने समस्त तेज के साथ पुनः गुरु के पास वापस लौट आती है ॥ १४ ॥

अब्दैकेन भवेद्योग्यो ब्रह्मणोऽब्दद्वयान्नृपः ।
वैश्यो वर्षैस्त्रिभिः शूद्रश्चतुर्भिर्वत्सरैर्गुरोः ।
सेवया सिद्धिमाप्नोति किंवा जपहुतादिभिः ॥ १५ ॥

गुरु ब्राह्मण जातीय की एक वर्ष पर्यन्त परीक्षा लेकर उसे योग्य होने पर शिष्य बनायें । इसी प्रकार क्षत्रिय का परीक्षा काल २ वर्ष, वैश्य का तीन वर्ष एवं शूद्र का चार वर्ष होता है । इस परीक्षा काल में योग्य सिद्धि होने पर तभी महाविद्या का मन्त्र देना चाहिए । शिष्य भले ही जप, होम कर पाये अथवा न कर पाये, वह गुरु भक्ति तथा गुरु सेवा से ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ १५ ॥

ततस्तु सद्गुरोर्दीक्षां गृहीत्वा भव तत्परः ।
पाशवेन तु कल्पेन दिवा पूजां समाचरेत् ॥ १६ ॥

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् शिष्य को प्रथमतः पशुभाव का अनुसरण करके दिन में पूजा जपादि करना चाहिए । कारण यह है कि पशुभाव में महानिशा पूजा निषिद्ध है ॥ १६ ॥

(पहले शिष्य पशुभाव में ही रहता है क्रमशः उसे वीरभाव की प्राप्ति होती है, तभी उसे महानिशा पूजन का अधिकार मिलता है) ।

प्रातःस्नायी ब्रह्मचारी निराहारो दृढव्रती ।
नित्यार्चनं दिवा कुर्यात् यावन्न स्यात् पुरक्रिया ॥ १७ ॥

प्रातः स्नान, ब्रह्मचर्य, आहन संयम तथा एकान्तवास एवं दृढ़व्रती होकर दिन में तब तक नित्यार्चन करे जब तक वीरभाव का अधिकार नहीं मिल जाता ॥ १७ ॥

नित्यार्चनरतो भूत्वा कुर्यान्मन्त्रपुरक्रियाम् ।
पुरश्चरश्चरणसम्पन्नो वीरभावं समाश्रयेत् ॥ १८ ॥

इस प्रकार से साधना करते-करते साधन योग्यता आने पर पुरश्चरण रूपी पंचांग क्रिया को सम्पन्न करे। पुरश्चरण के अन्त में वीराभिषेक द्वारा वीरभाव का अवलम्बन लेना चाहिए ॥ १८ ॥

पुत्रदारगृहस्नेहलोभमोहविवर्जितः ।
मन्त्रं वा साधयिष्यामि शरीरं वाथ पातये ॥ १९ ॥
प्रतिज्ञामीदृशीं कृत्वा वीरसाधनकर्मसु ।
प्रवर्त्तमानः पुरुषो दीक्षायाः फलमश्नुते ॥ २० ॥

इत्यन्नदाकल्पतन्त्रे द्वितीयं पटलम् ।

जिसे स्त्री-पुत्र-धन-धान्यादि में ममता-लोभ-मोह नहीं है और जिसका यह संकल्प है कि या तो मंत्र सिद्धि हो अथवा शरीर ही न रहे, ऐसा मनस्वी व्यक्ति ही वीर है। मद्य पीने वाला कदापि वीर नहीं है। साधन भजनार्थ जो बन्धु-बान्धव की निन्दा, स्त्री पुत्रादि की उपेक्षा, लोक परिहास तथा राजदण्ड भय से भी जो विचलित नहीं होते। उन्हें ही दीक्षा का वास्तविक फल प्राप्त होता है ॥ १९–२० ॥

॥ द्वितीय पटल समाप्त ॥

तृतीयं पटलम्

श्रीब्रह्मभैरव उवाच

दीक्षाविधानं कथितं त्वया नाथेन केवलम्।
मन्त्रोद्धारं वदेदानीं यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥ १ ॥

ब्रह्मभैरव कहते हैं—हे नाथ! आपने केवल दीक्षा विधान का उपदेश दिया। अब यदि आपका स्नेह मुझ पर है, तब आप मन्त्रोद्धार का वर्णन करिये ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकान्तचेतसा।
यज्ज्ञात्वा साधकश्रेष्ठो भवाब्धौ न निमज्जति ॥ २ ॥

श्रीशिव कहते हैं—हे भैरव! एकाग्रचित्त से सुनो। मैं मन्त्रोद्धार का उपदेश देता हूँ। इसका रहस्य जानने वाले साधक संसार-समुद्र में कभी नहीं डूबते ॥ २ ॥

नमो भगवति प्रान्ते माहेश्वरि पदस्ततः।
अन्नपूर्णे ततः स्वाहा विद्याराज्ञी प्रकीर्त्तिता ॥ ३ ॥
इयन्तु षोडशी नित्या नित्यज्ञानेश्वरी शिवा।
मम देहार्द्धदानस्य सम्प्रदानस्वरूपिणी ॥
ताराद्या भुवनेशाद्या श्रीबीजाद्या महेश्वरी।
कामाद्या वाग्भवाद्याश्च पञ्चधा सप्तदश्यपि ॥ ४ ॥
इयं परेति विख्याता परमार्थप्रवर्त्तिनी।
ब्रह्माण्डकोटिजननी प्रोच्यते चापराधुना ॥
तारमाया रमामाया माया श्रीबीजपूर्विका।
त्रिधाप्यष्टादशी विद्या क्रमेण परिकीर्त्तिता ॥ ५ ॥

'नमो भगवति माहेश्वरी अन्नपूर्णे स्वाहा' रूपी षोडशाक्षर मन्त्र को **विद्याराज्ञी** कहते हैं। इसके पहले ॐ (तार), ह्रीं, श्रीं क्लीं, ऐं का योग करने से ५ सप्तदशाक्षरी विद्या सिद्ध होती है। जैसे—(१) 'ॐ नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'। (२) 'ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'। (३) 'श्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'। (४) 'क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'। (५) 'ऐं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'।

इन पाँचों मन्त्रों का अन्य नाम है **पराविद्या**। पूर्वोक्त षोडशाक्षरी के पहले तार (ॐ) तथा माया (ह्रीं) श्रीं ह्रीं एवं ह्रीं श्रीं बीज का योग करने से तीन अष्टादशाक्षरी विद्या सिद्ध होती है। इन तीनों मन्त्रों को **अपराविद्या** कहा जाता है। जैसे—(१) 'ॐ ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'। (२) 'श्रीं ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'। (३) 'ह्रीं श्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' ॥ ३–५ ॥

न विद्यते परा यस्मात् अपरा तेन गीयते।
परापरा षोडशी सा द्वयोराश्रयरूपिणी॥
तन्मध्ये विधिना विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
तारश्च हृद्वह्निजाया माया हृद्वह्निसुन्दरी॥
रमा हृद्वह्निललना कन्दर्पो हृत्कृशानुगा।
वाग्भवं हृदयं वह्नेः कलत्रं पञ्च पञ्चधा॥ ६ ॥

जिसमें परा नहीं है उसे अपरा कहते हैं। षोडशी परापरा रूपा हैं। वे दोनों परा-अपरा की आश्रयरूपिणी हैं। इसमें पाँच विद्याएँ हैं। जो सभी तन्त्रों में गुप्त हैं। जैसे—(१) 'ॐ नमः स्वाहा'। (२) 'ह्रीं नमः स्वाहा'। (३) श्रीं नमः स्वाहा'। (४) 'क्लीं नमः स्वाहा'। (५) 'ऐं नमः स्वाहा' ॥ ६ ॥

पञ्चमीयं समाख्याता भोगमोक्षफलप्रदा।
तारमाया रमामाया माया श्रीहृदयङ्गता।
कृशानुवर्णितोपेता षड्वर्णेयं त्रिधा मता॥ ७ ॥

इसे **पञ्चाक्षरीविद्या** कहते हैं जो भोग-मोक्ष फल को देने वाली हैं।

षड्क्षरीविद्या तीन हैं। जैसे—(१) 'ॐ ह्रीं नमः स्वाहा'। (२) 'श्रीं ह्रीं नमः स्वाहा'। (३) 'ह्रीं श्रीं नमः स्वाहा' ॥ ७ ॥

क्रमशः पञ्चबीजाद्यं सम्बोधनपदत्रयम्।
सप्तार्णा पञ्चदशधा वह्निकान्तावसायिनी॥ ८ ॥

सप्ताक्षरी १५ मन्त्र ये हैं—(१) ॐ भगवति स्वाहा'। (२) 'ह्रीं भगवति स्वाहा'। (३) 'श्रीं भगवति स्वाहा'। (४) 'क्लीं भगवति स्वाहा'। (५) 'ऐं भगवति स्वाहा'। (६) 'ॐ माहेश्वरि स्वाहा'। (७) 'ह्रीं माहेश्वरि स्वाहा'। (८) 'श्रीं माहेश्वरि स्वाहा'। (९) 'क्लीं माहेश्वरि स्वाहा'। (१०) ऐं माहेश्वरि स्वाहा। (११) 'ॐ अन्नपूर्णे स्वाहा'। (१२) 'ह्रीं अन्नपूर्णे स्वाहा'। (१३) 'श्रीं अन्नपूर्णे स्वाहा'। (१४) 'क्लीं अन्नपूर्णे स्वाहा'। (१५) 'ऐं अन्नपूर्णे स्वाहा' ॥ ८ ॥

बीजयुग्मत्रयोपेता नवधा सा षडक्षरी।

वह्निकान्ताविहीनत्वान्नवधैव षडक्षरी ।
सप्तार्णा पञ्चदशधा सा पञ्चार्णा सदा भवेत् ॥ ९ ॥

षडक्षर मन्त्र ९ हैं—(१) 'ॐ ह्रीं भगवति । (२) 'ॐ ह्रीं माहेश्वरि' । (३) 'ॐ ह्रीं अन्नपूर्णे' । (४) 'श्रीं ह्रीं भगवति' । (५) 'श्रीं ह्रीं माहेश्वरि' । (६) 'श्रीं ह्रीं अन्नपूर्णे' । (७) 'ह्रीं श्रीं भगवति' । (८) 'ह्रीं श्रीं माहेश्वरि' । (९) 'ह्रीं श्रीं अन्नपूर्णे पञ्चाक्षर मन्त्र सप्ताक्षर के समान १५ हैं । सप्ताक्षर में से स्वाहा हटा देने से वह पंचाक्षर हो जाता है । त्र्यक्षर मन्त्र १० हैं ॥ ९ ॥

क्रमशः पञ्चबीजानि तदन्ते वह्निसुन्दरी ।
अथवा हृदयं दत्वा दशधा त्र्यक्षरी परा ॥ १० ॥

जैसे—(१) 'ॐ स्वाहा' । (२) 'ह्रीं स्वाहा' । (३) 'श्रीं स्वाहा' । (४) 'क्लीं स्वाहा' । (५) 'ऐं स्वाहा' । (६) 'ॐ नमः' । (७) 'ह्रीं नमः' । (८) 'श्रीं नमः' । (९) 'क्लीं नमः' । (१०) 'ऐं नमः' ॥ १० ॥

बीजयुग्मत्रयेणैव षड्विधा चतुरक्षरी ।
श्रीर्माया मादनं बीजं माया श्रीमदिनस्तथा ॥ ११ ॥

चतुरक्षरी विद्या ६ है । जैसे—(१) 'ॐ ह्रीं स्वाहा' । (२) 'ह्रीं श्रीं स्वाहा' । (३) 'श्रीं ह्रीं नमः' । (४) 'श्रीं ह्रीं स्वाहा' । (५) 'ॐ ह्रीं नमः' । (६) 'ह्रीं श्रीं नमः' ॥ ११ ॥

मादनं श्रीर्महामाया त्रिविधा त्र्यक्षरी भवेत् ।
इयं मत्प्राणदा प्राणभूता त्र्यक्षरशालिनी ॥ १२ ॥
सर्वसम्पत्तिशुभदा सर्वेप्सितफलप्रदा ।
शिवो बृहद्भानुगतः शशाङ्कपरिमण्डितः ॥ १३ ॥

पुनः त्र्यक्षरी तीन प्रकार की है—(१) 'श्रीं ह्रीं क्लीं' । (२) 'ह्रीं श्रीं क्लीं' । (३) क्लीं श्रीं ह्रीं' ।

ये प्राणद, प्राणस्वरूप तथा समस्त सम्पत्ति देने वाली इच्छित फलदायिनी तथा शुभ करने वाली हैं ॥ १२–१३ ॥

महामाया लताक्रान्तः कथितः क्रमदो मनुः ।
एकाक्षरी समा नास्ति विद्या ब्रह्माण्डमध्यतः ॥ १४ ॥

एकाक्षरी विद्या है 'ह्रीं' । इसके समान विद्या समस्त ब्रह्माण्ड में नहीं है ॥ १४ ॥

तारो माया रमा कामः शक्तितारः सरस्वती ।
पाशाङ्कुशौ षोडशार्णा पञ्चविंशाक्षरी परा ॥ १५ ॥

इसी प्रकार मूलभूत षोडशाक्षरी में तारादि बीज का योग करने से वह २५ अक्षरों वाली विद्या हो जाती है ।। १५ ।।

मायामन्त्रमयी विद्या तव स्नेहादिहोदिता ।
विधिना दीक्षणादस्याः शिवत्वं प्राप्नुयात् किल ।। १६ ।।

तुम्हारे स्नेह के कारण मैंने मयामन्त्रमयी विद्या का उपदेश किया है। विधिपूर्वक इसकी दीक्षा लेने से शिवत्व प्राप्त होता है ।। १६ ।।

सर्वासामेव विद्यानां मेरुभूता च षोडशी ।
तथैव पञ्चबीजानि मेरुभूतानि भावय ।। १७ ।।

सभी विद्याओं में षोडशी विद्या मेरु के समान है। इस प्रकार पञ्च बीजों को मेरु रूप जानो ।। १७ ।।

मेरुं बिना मन्त्रजातं सर्वं भवति निष्फलम् ।
त्यक्त्वा सम्बोधनं तत्र ङे ऽवसानेऽनलप्रिया ।। १८ ।।
हृदयं वा महादेव्याः षोढा विद्या षडक्षरी ।
इति ते कथिता देव्याः षोढा विद्या षडक्षरी ।। १९ ।।
इति ते कथितं देव्या रहस्यं परमाद्भुतम् ।
मन्त्रोद्धारो महेशान्याः किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ।। २० ।।

इत्यन्नदाकल्पतन्त्रे तृतीयं पटलम् ।

इस मेरु के बिना समस्त मन्त्रजात निष्फल हैं। सम्बोधन पद का त्याग करके चतुर्थ्यन्त पद के साथ स्वाहा शब्द जोड़ने से महादेवी हृदय स्वरूप षडक्षरी विद्या प्राप्त होती है। मैंने तुमसे देवी की षड्क्षरी को कहा है।

इस प्रकार मैंने महादेवी का मन्त्रोद्धार तुमको बतलाया। तुम्हारी और क्या सुनने की कामना है वह पूछो ।। २० ।।

।। तृतीय पटल समाप्त ।।

चतुर्थं पटलम्

श्रीब्रह्मभैरव उवाच

विद्यामाहात्म्यममलं कथयस्व मयि प्रभो।
कस्याः कीदृक् फलं नाथ किं वा जपहुतादिकम्॥ १॥

ब्रह्मभैरव कहते हैं—प्रभो! निर्मल विद्या का माहात्म्य एवं जप होमादि का वर्णन करिये॥ १॥

श्रीशिव उवाच

साधु पृष्ठं त्वया ब्रह्मन् विद्यामाहात्म्यमुत्तमम्।
मया समस्ता विद्यानां वाग्भिः स्तोतुं न शक्यते॥ २॥
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
किं पुनः पञ्चभिर्वक्त्रैः पञ्चजिह्वाभिरेव च॥ ३॥
तथापि कथयिष्यामि तव स्नेहात् समासतः॥ ४॥

श्रीशिव कहते हैं—ब्रह्मन्! तुमने विद्या सम्बन्धित अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है। कोटि सहस्र मुख तथा कोटि सहस्र जिह्वा द्वारा भी इनका वर्णन नहीं हो सकता। मेरे पाँच मुखों की पांच जिह्वाओं से भी इनका वर्णन नहीं हो सकता। फिर भी मैं तुम्हारे स्नेह के वशीभूत होकर इसका किंचित् वर्णन करता हूँ॥ २–४॥

प्रणवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी।
इति सप्तदशी विद्या प्रोच्यतेऽष्टादशाक्षरी।
तारमायादिका विद्या भोगमोक्षैकसाधनी॥ ५॥
श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी।
कामाद्या सा सप्तदशी सर्वकामप्रपूरणी॥ ६॥
माया श्रीबीजयुग्माद्या सदा विभववर्द्धिनी।
श्रीमायाबीजयुग्माद्या सदा सम्पत्तिपूरणी॥ ७॥
विद्याभेदान्तराणाञ्च बीजयोगेन तत्फलम्।
निर्बीजाश्चैव या विद्या भोगमोक्षैकभूमिकाः॥ ८॥

प्रणवयुक्ता विद्या वागीशत्व प्रदान करती है। प्रणव तथा मायाबीज युक्ता विद्या भोग-मोक्ष प्रदायिनी हो जाती है। श्रीबीज युक्ता धन सम्पत्ति देती है, कामबीजाद्या सर्वकामनाओं की पूर्त्ति करती है वह सप्तदशी विद्या है। माया तथा श्रीबीज युक्ता विद्या सदा वैभव बढ़ाने वाली होती है। श्री तथा माया

बीज युक्ता विद्या सर्वसम्पत्ति देती है। जो निर्बीज विद्या है वह भोग एवं मोक्ष दोनों को देती है ॥ ५–८ ॥

महामदि महाघोरे महादारिद्र्यसङ्कटे।
महारण्ये महायुद्धे महादुर्भिक्षपीडने ॥ ९ ॥
स्मरणादेव विद्यायाः क्षयं गच्छन्ति चापदः।
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च।
वस्त्रवाटीगृहादींश्च लभेद् विद्याप्रसादतः ॥ १० ॥

विपत्ति में, दरिद्रता के संकट में, वन में, युद्धभूमि में, दुर्भिक्ष में विद्या का स्मरण करने से आपत्ति दूरीभूत हो जाती है। इसकी कृपा से धन-धान्य, पुत्र, जाया, हाथी, अश्व, वस्त्र, गृह तथा उद्यान आदि की भी प्राप्ति हो जाती है ॥ ९–१० ॥

यदि भाग्यवशाद्विद्या सद्गुरोर्मुखपङ्कजात्।
अन्नोद्भवेन तीर्थेन लभ्यते सैव सिद्धिदा ॥ ११ ॥

यदि भाग्यवशात् सद्गुरु के मुखकमल से अन्नोद्भव तीर्थ योग से विद्या प्राप्त होती है, तब उससे निश्चय ही सिद्धि मिल जाती है ॥ ११ ॥

धन्यं तस्य कुलं पुण्यं पिता तस्य सुरोपमः।
कामतुल्यश्च नारीणां येनेयं जप्यते सदा ॥ १२ ॥

विद्या जप करने वाले साधक का कुल पवित्र हो जाता है। उसके पिता देवताओं की तरह हो जाते हैं और वह नारीगण के लिए कामदेव के समान प्रतीत होने लगता है ॥ १२ ॥

हिमालय इव स्थैर्ये तेजसा भास्करोपमः।
दाने कल्पद्रुमः साक्षात् येनेयं जप्यते सदा ॥ १३ ॥

विद्या का जप करने वाला पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी, हिमालय के समान स्थिर तथा दान में कल्पवृक्ष के तुल्य हो जाता है ॥ १३ ॥

सुखसेव्या सुखध्येया सुखाराध्या सुखप्रदा।
सुखस्वरूपा सुखिनी भजतां सुखदायिनी ॥ १४ ॥

यह कोमल हृदया विद्या सुखसेव्या, सुखध्येया, सुखाराध्या, सुख देने वाली, सुखस्वरूपा, सुखिनी तथा जप करने पर सुखदायिनी है ॥ १४ ॥.

वैदिकैश्च समाचारैः यज्ञदानजपव्रतैः।
क्षीणाद्यानां नृणां वत्स ! विष्णुभक्तिः प्रजायते ॥ १५ ॥

दान-यज्ञ-जप-व्रतादि रूपी वैदिक आचारों से व्यक्ति के पाप क्षीण हो जाने पर उसमें विष्णुभक्ति का उदय होता है ॥ १५ ॥

विष्णुभक्तिः सुविमला मतिरुत्पद्यते यदा।
तदा तद्भाग्ययोगेन शिवभक्तिर्भवेन्नृणाम् ॥ १६ ॥
शिवार्चनेन महता शिवत्वं प्राप्नुयाद्यदा।
तदा दुर्गापदाम्भोजे मतिरुत्पद्यते स्वयम् ॥ १७ ॥
तत्रापि नानादुःखाद्यैर्वीरसाधनसम्भवैः।
पुण्यैर्बहुजपध्यानैर्भाग्यतोऽन्नप्रदां श्रयेत् ॥ १८ ॥

विष्णु की भक्ति से चित्त की मलिनता समाप्त हो जाने के उपरान्त उसके भाग्य से साधक में शिवभक्ति का आविर्भाव होता है। शिवार्चन से जब भक्त को शिव की प्राप्ति हो जाती है, तब दुर्गा के चरणों की सेवाभाव वृत्ति साधक को प्राप्त होती है। तदनन्तर भगवती की कृपा होने पर नाना कष्टों से वीर साधन तत्पर होने के पश्चात् अनेक ध्यान-जप जनित पुण्य से भाग्यवशात् कुल जननी माँ अन्नपूर्णा का आश्रय प्राप्त होता है ॥ १५–१८ ॥

कृतार्थस्तेन वपुषा शिवत्वं प्राप्य चानिशम्।
आनन्दमग्नः सन्तुष्टो नित्यं नित्यार्चनश्चरेत् ॥ १९ ॥

तब जीव शिव रूप होकर कृतार्थ हो जाता है। सर्वदा आनन्द में मग्न, सन्तुष्ट चित्त होकर नित्य नित्यार्चन तत्पर हो जाता है ॥ १९ ॥

अस्ति चेद्बहुधा विद्या बहुतन्त्रार्थगोचरा।
तथापि शाम्भवी तन्त्रे विद्यैषा प्राणवल्लभा ॥ २० ॥

अनेक तन्त्रों में विद्या का अनेक रूप दृष्टिगोचर होने पर भी यही अन्नदारूप निरतिशय प्राणप्रिय रूप है ॥ २० ॥

कुलक्रमगता सिद्धा पश्वाचारेण सिद्धिदा।
अन्नोद्भवेन तीर्थेन रक्तवर्णेन यो नरः ॥ २१ ॥
पूजयेत् परया भक्त्या शिवो भवति नान्यथा ॥ २२ ॥

पितामहादि कुल क्रम से सिद्धा यह विद्या पश्वाचार से भी सिद्धि प्रदा हो जाती है। अर्थात् पश्वाचार वरण करने पर भी यह सिद्धिदात्री हो जाती है, तब वीरभाव की तो बात ही क्या? जो मनुष्य अन्न से उत्पन्न रक्तवर्ण तीर्थ द्वारा अतिशय भक्ति से माँ का पूजन करता है, वह निश्चय ही शिवत्व प्राप्त करता है ॥ २१–२२ ॥

नारीं सप्तदशाब्दां वा तथाष्टादशवत्सराम्।
देवीं बुद्ध्या पूजयित्वा वस्त्रालङ्कारभोजनैः ॥ २३ ॥
तदग्रे साधकवरो जपेत् तद्गतमानसः।
सहस्रशोडषमितं मन्त्रं ध्यानपुरःसरम्।
सिद्धो भवति लोकेन नान्यथा यत्नकोटिभिः ॥ २४ ॥

१७ या १८ वर्ष की स्त्री की जो साधक देवी बुद्धि से पूजा करता है और उसको वस्त्र, अलंकार भोजन से तृप्त करके उसके समक्ष १६ हजार मन्त्र जप करता है, वह अवश्य सिद्धि प्राप्त करता है। उसके लिए अन्य उपासना की आवश्यकता ही नहीं है ॥ २३–२४ ॥

दशांशं हवनं कुर्यात् पायसान्नेन सर्पिषा।
तद्दशांशेन तीर्थेन तर्पणं तर्पणं मतम् ॥ २५ ॥
कुलप्रक्षालनाम्भोभिस्तद्दशांशाभिषेचनम् ।
तद्दशांशेन मतिमान् पञ्चतत्वादिना सुधीः ॥ २६ ॥
ब्राह्मणौ भोजयेत् साधु साधकौ देवताप्रियौ।
ततः कुमारीं सम्पूज्य वस्त्रालङ्कारभोजनैः ॥ २७ ॥
गुरवे दक्षिणां दद्यात् यथाविभवमात्मनः।
तदन्ते महतीं पूजां कुर्यात् साधकशक्तिभिः ॥ २८ ॥
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगादीन् समाचरेत् ॥ २९ ॥

इत्यन्नदाकल्पे विद्यामाहत्म्यपुरश्चरणं नाम चतुर्थं पटलम् ।

जपान्त में जप संख्या का १ हवन घृतपायस अथवा घृतमिश्रित अन्न से करना चाहिए। (अर्थात् १६०० आहुति)। उसका १/१० अर्थात् १६० तर्पण करे। तदनन्तर उसका १ अर्थात् १६ संख्यक कुल प्रक्षालन जल द्वारा मस्तक का अभिषेक करे। दो ब्राह्मणों को पंचतत्व का भोजन कराये। उसके पश्चात् एक कुमारी को वस्त्र अलंकार, भोजन द्वारा पूजन करके श्रीगुरुदेव को सामर्थ्यानुसार दक्षिणा प्रदान करे। तत्पश्चात् माँ की महती पूजा करे। इस प्रकारमन्त्र सिद्धि प्राप्त करके साधक निग्रह तथा अनुग्रह करने में समर्थ हो जाता है ॥ २५–२९ ॥

चतुर्थ पटल समाप्त।

पञ्चमं पटलम्

ब्रह्मभैरव उवाच

नित्यपूजाविधानञ्च सूचितं न प्रकाशितम् ।
कथयस्व तदेदानीं यदि मेऽस्ति दया तव ॥ १ ॥

ब्रह्मभैरव कहते है—मैंने अन्य से पूर्वाध्याय में नित्य पूजा-विधान की सूचना सुनी परन्तु वह अभी तक प्रकाशित नहीं है। यदि आपकी दया मुझ पर है, तब कृपया उसे कहिये ॥ १ ॥

शिव उवाच

शृणु ब्रह्मन् परं तत्वं देव्या नित्यार्चनं परम् ।
बिना येन न सिद्धिःस्यात् देवता न प्रसीदति ॥ २ ॥

शिव कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं नित्य पूजन विधि कहता हूँ उसे सुनो। इसके बिना देवता प्रसन्न नहीं होते और सिद्धि भी नहीं मिलती ॥ २ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय कुलवृक्षं प्रणम्य च ।
शिरःपद्मे सहस्रारे चन्द्रमण्डलधारके ॥ ३ ॥
अकथादित्रिरेखीये हंसमन्त्रं स्वपीठके ।
ध्यायेन्निजगुरुं वीरो रजताचलसन्निभम् ॥ ४ ॥
पद्मासीनं स्थितमुखं वरामयकराम्बुजम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरं शुक्लगन्धानुलेपनम् ॥ ५ ॥
वामोरुस्थितया रक्तशक्त्यालिङ्गितविग्रहम् ।
तया स्वदक्षहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ॥ ६ ॥
वामेनोत्पलधारिण्या सुरक्तवसनस्त्रजा ।
स्मितवक्त्रप्रभाबिम्बं शिवदुर्गास्वरूपिणम् ॥ ७ ॥
परानन्दरसाघूर्ण्यं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ।
तारत्रयं समुच्चार्य ह स ख फ्रें ततः परम् ॥ ८ ॥
हसक्षमल वर यूं ह स ख फ्रें हसौस्ततः ।
अमुकानन्दनाथान्ते ह्यमुकी देव्यनन्तरम् ॥ ९ ॥
अम्बा श्रीपादुकां दत्त्वा पूजयामि नमोऽन्तकम् ।
अयं श्रीपादुकामन्त्रः सर्वेप्सितफलप्रदः ॥ १० ॥
मिथुनं चिन्तयित्वाथ मानसैरुपचारकैः ।
भौतिकैः पूजयेद्विद्वान् मुद्रामन्त्रसमन्वितैः ॥ ११ ॥

भूम्याकाशमरुद्वह्निवारिवर्णैः सविन्दुकैः ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठतर्जन्यौ मध्यमानामिके तथा ।। १२ ।।
अङ्गुष्ठेन समायोगान्मन्त्राः पञ्च प्रकीर्त्तिताः ।
पृथिव्यात्मकोऽत्रगन्धः स्यादाकाशात्मकपुष्पकम् ।। १३ ।।
धूपो वाय्वात्मकः प्रोक्तो दीपो वह्न्यात्मकः परः ।
रसात्मकश्च नैवेद्यं पूजा पञ्चोपचारिका ।। १४ ।।

ब्राह्म मुहूर्त्त में शय्या छोड़कर कुल वृक्ष (अश्वत्थ, अशोक, आमलकी, नीम आदि) को प्रणाम करे। तदनन्तर सुखासन पर बैठकर मस्तक स्थित सहस्रदल, कमल के अन्तर्गत सुधा मण्डल में 'अ-क-थ' वर्णमाला से गठित त्रिकोण मण्डलस्थ हंस पीठ पर अपने गुरु का ध्यान करे। गुरुदेव चाँदी के पर्वत के समान शुक्ल वर्ण हैं और पद्मासन लगाये बैठे हैं। उनके मुख पर स्मित हास्य है। दोनों हाथों में वर एवं अभय मुद्रा धारण किये हुए हैं। सफेद माला तथा सफेद वस्त्र और शुभगंधानुलेप से शोभित हैं। उनकी पत्नी बाँयी और बैठकर अपने दाहिने हाथ को पति की देह पर लपेटी हुई हैं। उन्होंने बाँयें हाथ में लाल वर्ण का पुष्प धारण किया है। गुरु पत्नी की देहकान्ति लाल है। वे रक्त वर्ण के वस्त्र तथा इसी वर्ण की माला धारण की हुई हैं। दोनों ही हास्य प्रभा से शोभित हैं। दोनों की देह में एक दूसरे की देह का प्रतिबिम्ब पड़कर अर्द्धनारीश्वर मूर्त्ति का द्योतन करा रहा है। दोनों ही आत्मानन्द रस से उन्मत्त से हैं। वे आघूर्णित नेत्रों से एक दूसरे को देख रहे हैं। इस प्रकार गुरु मूर्त्ति का चिन्तन करते हुए नाम ग्रहण करे तथा पादुका मन्त्र का पाठ करके पूजा एवं प्रणाम करे। पादुका मन्त्र इस प्रकार है—

ऐं ह्रीं श्रीं ह स ख फ्रें हस क्ष मलवर यूं हसख फ्रें हेसौः श्री मातङ्गिनी देव्याम्बासहित श्रीदेवानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः (देवानन्द के स्थान पर गुरु का नाम लगाये, यही नाम ग्रहण है)।

तत्पश्चात् मानसिक पंचभूतात्मक पंचोपचार से गुरु दम्पत्ति की सहस्रदल से पूजा करे।

पंचोपचार—(१) लं भूम्यात्मको गन्धः ऐं श्रीगुरवे नमः। (२) हं आकाशात्मकं पुष्पं ऐं श्रीगुरवे नमः। (३) यं वाय्यात्मकः धूपः ऐं श्रीगुरवे नमः। (४) वं वह्न्यात्मकः दीपः ऐं श्रीगुरवे नमः। (५) वं जलात्मकं नैवेद्यं ऐं श्रीगुरवे नमः।

पंचद्रव्य दान के समय क्रमशः पंचमुद्रा प्रत्येक द्रव्यदान के साथ दिखलाता रहे।

(१) गंधमुद्रा—अंगूठा, कनिष्ठा का परस्पर स्पर्श।

(२) पुष्पमुद्रा—अंगूठा, तर्जनी का परस्पर स्पर्श।

(३-४) धूप-दीप मुद्रा—अंगूठा, मध्यमा का परस्पर स्पर्श ।
(५) नैवेद्य मुद्रा—अंगूठा तथा अनामिका का परस्पर स्पर्श ।
इस प्रकार पंचोपचार अर्पित करना चाहिए ॥ ३–१४ ॥

ततस्तु वाग्भवं जप्यादष्टोत्तरशतं सुधीः ।
जपं समर्प्य विधिवत् प्रणमेद्दण्डवत् सुधीः ॥ १५ ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १६ ॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १७ ॥

तदनन्तर १०८ बार 'ऐं' बीज का जप करके जप समर्पण करते हुए दण्डवत् प्रणाम करे ।

प्रणाम मन्त्र है श्लोक १६ तथा १७ का उच्चारण करे ॥ १५–१७ ॥

अथ लब्ध्वा गुरोराज्ञां चिन्तयेन्मन्त्ररूपिणीम् ।
मूलाधारे कर्णिकान्तस्त्रिकोणं त्रिकोणात्मकम् ॥ १८ ॥
तद्योनिकुहरे लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं परम् ।
तस्योपरि गतां ध्यायेत् सार्द्धत्रिवलयान्वितम् ॥ १९ ॥
प्रसुप्तां भुजगाकारां विषतन्तुतनीयसीम् ।
तडित् सूर्येन्दुकोटीनां प्रभापूरित विग्रहाम् ॥ २० ॥
मनोदण्डहतां कृत्वा हुङ्कारेणैव कुण्डलीम् ।
पवनानलसंयोगाच्चैतन्यं कारयेदथ ॥ २१ ॥
ज्वलद्दीपशिखाकारां विश्राम्य प्रति पङ्कजे ।
सहस्रारे हंसपीठे परमात्मनि योजयेत् ॥ २२ ॥
तस्या योगान्निराकारः साकारो भवति क्षणात् ।
ध्यात्वा तयोः सामरस्यं मनस्तस्माद्विघट्टयेत् ॥ २३ ॥
चन्द्रार्द्धमण्डले भाले ततः कुलगुरुन् यजेत् ।
प्रह्लादानन्दनाथञ्च सनकानन्दनाथकम् ॥ २४ ॥
कुमारानन्दनाथञ्च वशिष्ठानन्दनाथकम् ।
क्रोधानन्दसुखानन्दौ ध्यानानन्दं ततः परम् ॥ २५ ॥
बोधानन्दमथाभ्यर्च्य ध्यायेत् कुलमुखोपरि ।
महारासरतोल्लासहृदयाघूर्णलोचनः ॥ २६ ॥
कुलालिङ्गनसम्भिन्नचूर्णिताशेषतामसः ।
कुलशिष्योपरि कृपापूर्णान्तकरणोद्यतः ॥ २७ ॥
वराभययुताः सर्वे कुलतत्वार्थवेदिनः ।

इत्थं कुलगुरुन् ध्यात्वा प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ २८ ॥
आनन्दलोलीभूतां तां रतिश्रान्तां मनोहराम् ।
पुनस्तेन यथा मूले संस्थाप्य प्रणमेदनु ॥ २९ ॥
प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।
अन्तःपदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपाममलां प्रपद्ये ॥ ३० ॥
मन्त्रचैतन्यमेतत्तु कथितं गुरुभाषितम् ।
तत्प्रभापटलव्याप्तपाटलीकृतदेहवान् ॥ ३१ ॥

अब गुरु से (मानसिक रूप से) आज्ञा लेकर मूलाधार पद्मस्थ कुल कुण्डलिनी का चिन्तन करना चाहिए। वह मृणाल सूत्र के समान सूक्ष्म है, वह सार्द्धत्रिवलयाकारा नागिन के समान निश्चेष्ट तथा अलस है। वह करोड़ों चन्द्रमा की तरह स्निग्ध, करोड़ों विद्युत के समान उज्ज्वल देह कान्ति युक्ता है। 'हुँ' मन्त्र का सबल उच्चारण करते हुए वायु तथा अग्नि के संयोग से कुण्डलिनी को चेतना युक्त तथा आलस्य रहित करे। चैतन्य प्राप्त कुण्डलिनी प्रज्वलित दीपशिखा की तरह पाँचों चक्रों में से उठते हुए किंचित् विश्रान्त होकर सहस्रारस्थ हंस पीठ में परमात्मा के साथ मिलित हो जाती है। परमात्मा से मिलते ही वह निरवयव हाथ-पैर रहित सूत्र रूपिणी कुण्डलिनी साकार हो जाती है। अब इन (परमात्मा + कुण्डलिनी) के समरसानन्द का चिन्तन करते हुए ललाट देश में कुलगुरुओं का पूजन करे। कुल गुरु आठ हैं—१. प्रह्लादानन्द, २. सनकानन्द, ३. कुमारानन्द, ४. वशिष्ठानन्द, ५. क्रोधानन्द, ६. सुखानन्द, ७. ध्यानानन्द, ८. बोधानन्द।

ये सभी महारास के महानन्द से उल्लसित, आनन्द घूर्णित नेत्र युक्त, कुलशक्ति के आलिंगन द्वारा समस्त पापताप तथा अज्ञान को चूर्ण करके शिष्यों के प्रति कृपाकटाक्ष कर रहे हैं। इस प्रकार का चिन्तन करके प्रणाम करे और आनन्द से लोलीभूता, रतिश्रान्ता (ब्रह्मानन्द से उन्मत्त) कुल कुण्डलिनी को विलोम भाव से समस्त पद्मों में किंचित् विश्राम कराते हुए सहस्रार से लौटाते हुए मूलाधार में लाये। अब श्लोक संख्या ३० का चिन्तन करते हुए उन्हें प्रणाम करना चाहिए। यही है मन्त्रचैतन्य जिसे गुरुओं ने कहा है। प्रणाम मन्त्र श्लोक ३० का अर्थ है—

हे जगत् माता ! प्रातःकाल से प्रारम्भ करके संध्या तथा संध्या से प्रारम्भ करके पुनः प्रातःकाल पर्यन्त जो कुछ ऐहिक, पारत्रिक कार्य करता हूँ। सब आपकी पूजा है ॥ १८–३१ ॥

ततस्तु साधको ध्यायेदात्मानं देवतामयम् ।
अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥ ३२ ॥

इत्थं सञ्चिन्त्य चात्मानं जिह्वाग्रे दीपरूपिणीम् ।
मूलविद्यां विभाव्याथजिह्वां तालुगतां चरेत् ॥ ३३ ॥
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा समर्प्य प्रणमेत्ततः ।
प्रातरारभ्य सायान्तं सायाह्नात् प्रातरन्ततः ।
यत् करोमि जगन्मातस्तदस्तु तव पूजनम् ॥ ३४ ॥
ततः श्वासानुसारेण मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
प्रणम्य पृथिवीं मन्त्री तत्पादं भुवि विन्यसेत् ॥ ३५ ॥
बहिर्गत्वा तु मैत्रादिदन्तधावनपूर्वकम् ।
मुखप्रक्षालनं कृत्वा कुर्यात् पुष्पादिसञ्चयम् ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् साधक को चाहिए कि वह स्वयं को देवता के तेज से तेजोमय तथा देवतास्वरूपमय चिन्तन करे। 'अहं देवी'—से लेकर स्वभाववान्' पर्यन्त श्लोक से इसका चिन्तन करे। चिन्तन करे कि हे जगत् माता ! प्रातःकाल से सायं तक और पुनः सायं से प्रातःकाल पर्यन्त जो भी कार्य मैं करता हूँ, वह आपकी पूजा है।

अब मन्त्रार्थ चिन्तन करके जिह्वा के अग्रभाग में दीपरूपिणी एवं मूलमंत्र रूपिणी विद्या का चिन्तन करके जिह्वा को तालु से चिपका कर १०८ बार मूल मंत्र जपे, तदनन्तर उसका विसर्जन (जप समर्पण) करके प्रणाम करे।

अब जिस नासिका के छिद्र से प्रबलरूप से वायु प्रवाहित हो रहा है उस तरफ के पैर को मूल मंत्र पढ़ते हुए आगे बढ़ाये और पृथ्वी को प्रणाम करे। तत्पश्चात् शौचादि, दन्तधावनादि करके पुष्प बिल्व पत्रादि को एकत्र करे ॥ ३२–३६ ॥

गङ्गायां पुण्यनद्यां वा देवखातेऽथ निर्झरे ।
तडागे पुष्करिण्यां वा स्नानाय प्रयतो व्रजेत् ॥ ३७ ॥
दिवं भुवश्चान्तरीक्षं जलमात्मानमेव च ।
सर्वं बालार्ककिरणव्याप्तं रक्तं विचिन्तयेत् ॥ ३८ ॥

स्नान हेतु गंगा, समुद्र में जाकर समाप्त होने वाली नदी, देवखात, तडाग, झरना या पुष्करिणी में जाये। जाते समय यह चिन्तन करे कि जल, स्थल, अन्तरिक्ष, दृष्टिगोचर होने वाले समस्त वृक्षादि वस्तु तथा अपनी देह भी बाल सूर्य की किरणों से रक्तवर्ण हो रहे हैं ॥ ३७–३८ ॥

मृत्कुशान् कुशपात्रादि गृहीत्वा भावतत्परः ।
मलापकर्षणं स्नात्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर भक्ति से गद्-गद् होकर मृत्तिका, कुश, कुशपात्रादि ग्रहण करके

पहले मल हटाने वाला (शारीरिक अशुद्धि हटाने वाला) स्नान करके तब मन्त्र स्थान करे ॥ ३९ ॥

कुलपात्रं सदूर्वञ्च सलिलं स जलं ततः ।
गृहीत्वा चान्नदाप्रीत्यै करिष्ये स्नानमन्वहम् ॥ ४० ॥
कृतसङ्कल्प एवासौ षडङ्गं प्राणसंयमम् ।
कृत्वा तु पुरतस्तोये कुलचक्रं लिखेद् बुधः ॥ ४१ ॥
कुलसूर्यात् समाकृष्य कुलमुद्राङ्कुशेन तु ।
कुलतीर्थानि तत्रैव विन्यस्य तदनन्तरम् ॥ ४२ ॥
अवगुण्ठा च संरक्ष्य धेनुयोनिं प्रदर्श्य च ।
मूलेन दशधामंत्र्य त्रिधा कलशमुद्रया ॥ ४३ ॥
मूर्ध्नि निक्षिप्य तत्तोयं मूलमन्त्रं समुच्चरेत् ।
सप्त छिद्राणि संरुध्य त्रिर्निमज्जेज्जलान्तरे ॥ ४४ ॥

कुलपात्र, दूर्वा, तिल तथा जल लेकर यह संकल्प करे कि मैं अन्नदादेवी को प्रसन्न करने के लिए स्नान करता हूँ । इस प्रकार से संकल्प, षडंगन्यास, प्राणायाम करके मूल में लिखित मुद्राओं का प्रदर्शन करके तीन बार जल में डुबकी लगाये ॥ ४०-४४ ॥

उत्थाय गात्रं सम्मार्ज्य आचम्य तिलकी भवेत् ।
तत् पादाब्जरजो ध्यात्वा त्रिपुण्ड्रं बिन्दुसंयुतम् ॥ ४५ ॥

अब शरीर को पोछकर तथा आचमन करके देवी की पदरज की बुद्धि करके (मानते हुए) मृत्तिका द्वारा बिन्दु युक्त त्रिपुण्ड लगाना चाहिए ॥४५॥

कृत्वाचम्य ततः सन्ध्यां वैदिकीं तान्त्रिकीं चरेत् ।
देवान् पितृन् ऋषीन् मर्त्यान् सन्तर्प्यामृतबुद्धितः ॥ ४६ ॥

अब आचमन करके वैदिकी एवं तांत्रिकी संध्या करनी चाहिए और देवता, पितृ, ऋषि तथा मर्त्य की भावना करते हुए उनका तर्पण करना चाहिए ॥४६॥

अन्नदां तर्पयामीति स्वाहामायादितर्पणम् ।
अष्टादशाञ्जलिं दद्यात् पश्चादावरणादिकम् ॥ ४७ ॥

अन्नदा का 'अन्नदां तर्पयामि स्वाहा' यह तर्पण मन्त्र है । तत्पश्चात् 'ह्रीं' तर्पयामि स्वाहा द्वारा आवरण देवताओं का तर्पण करे ।

एकैकाञ्जलिना मन्त्री प्रत्येकं तर्पयेत्ततः ।
कुलसूर्याय देवाय त्रिधा चार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ४८ ॥

प्रत्येक को एक-एक अंजलि तर्पण करे । परन्तु कुल देवता तथा सूर्य को तीन-तीन अर्घ्य देना चाहिए ॥ ४८ ॥

यथाशक्ति जपेत् पश्चात् गायत्रीं ब्रह्मरूपिणीम् ।
माया नमो भगवत्यै विद्महे तदनन्तरम् ।
माहेश्वरी पदञ्चोक्त्वा धीमहीति पदस्ततः ॥ ४९ ॥
तन्नोऽन्नपूर्णे च पदं प्रचोदयादनन्तरम् ।
अन्नप्रदाया गायत्री कारणानुप्रदायिनी ॥ ५० ॥

तदनन्तर यथाशक्ति वैदिकी एवं तान्त्रिकी सन्ध्या करना चाहिए । अन्नदा गायत्री इस प्रकार से है—'ह्रीं नमो भगवत्यै विद्महे माहेश्वर्यै धीमहि तन्नोऽन्नपूर्णे प्रचोदयात्' । सहस्र जप से इसका पुरश्चरण करे । यह समस्त फलदायिका है ॥ ४९–५० ॥

शोषिणी सर्वपापानां मोचनी सकलापदाम् ।
दारिद्र्यदमनी नित्यं सुखमोक्षप्रदायिनी ॥ ५१ ॥

यह समस्त पापों का शोषण करने वाली, समस्त आपदाओं का मोचन करने वाली, दारिद्र्य का नाश करने वाली तथा सदा सुख एवं मोक्ष देने वाली है ॥ ५१ ॥

एकोच्चारणमात्रेण ब्रह्महत्यादि पातकम् ।
नाशमायाति नियतं जन्मान्तरसमुद्भवम् ॥ ५२ ॥
दशभिर्दशजन्मोत्थं शतेन शतजन्मनः ।
सहस्रेण सहस्रोत्थमित्थं पातकनाशिनी ॥ ५३ ॥
सर्वागमानां साराणां सारभूता सनातनी ।
चित्कलेयं समाख्याता सहस्रेण पुरक्रिया ॥ ५४ ॥

एक बार के उच्चारण से एक जन्म का ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट हो जाता है । १० बार उच्चारण से दस जन्मों का, १०० बार उच्चारण से सौ जन्मों का तथा सहस्र जप से सहस्र जन्मों का पातक नष्ट हो जाता है । यह समस्त आगमों की सारभूता सनातनी चित्कला नामक विद्या है । इसके एक हजार जप से पुरश्चरण हो जाता है ॥ ५२–५४ ॥

ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्रीच्छन्दश्छन्दः प्रकीर्त्तितम् ।
देवतान्नप्रदा देवी चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥ ५५ ॥
मायाबीजं नमः शक्तिः कीलकं स्यात् प्रचोदयात् ।
ध्यायेत् कालत्रये देवीं त्रिगुणां गुणभेदतः ॥ ५६ ॥

इस गायत्री के ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्द है गायत्री, देवता है चतुर्वर्ग प्रदायिनी अन्नदा देवी । इसकी शक्ति है 'ह्रीं नमः' और कीलक है 'प्रचोदयात्' । गुण भेदानुसार देवी का ध्यान त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या) में करना चाहिए ॥ ५५–५६ ॥

प्रातर्ब्राह्मी रक्तवर्णा द्विभुजा च कुमारिका।
कमण्डलुं तीर्थपूर्णाभक्षमालाञ्च बिभ्रतीम् ॥

रक्तवर्णा द्विभुजा तथा कुमारिका हैं। उनके एक हाथ में जलपूर्ण कमण्डलु तथा दूसरे में अक्षमाला सुशोभित है। वे वयः में कुमारी रूपा हैं।

कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढां शुचिस्मिताम् ॥ ५७ ॥

वे काले मृग चर्म को धारण करने वाली हंसारूढ़ा तथा स्मित हास्य युक्त मुख वाली हैं ॥ ५७ ॥

मध्याह्ने सा श्यामवर्णा वैष्णवीयं चतुर्भुजा।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणी गरुडासना ॥ ५८ ॥
पीनोत्तंगकुचद्वन्द्वा वनमालाविभूषिता।
युवती च सदा ध्येया मध्ये मार्त्तण्डमण्डले ॥ ५९ ॥

मध्याह्न में श्यामवर्णा चतुभुर्जा वैष्णवी रूप से उनका ध्यान करना चाहिए जो शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण करती हैं और गरुड़ पर आसीन हैं।

उनके दोनों स्तन पुष्ट हैं वे वनमाला को गले में धारण की हुई हैं। वयः में वे युवती हैं। इनका ध्यान सूर्यमण्डल के मध्य में करना चाहिए ॥५८–५९॥

सायं सरस्वतीरूपा शुक्ला शुक्लाम्बरा सती।
त्रिनेत्रा वरदा पाशशूलखर्परधारिणी ॥ ६० ॥
वृषभासनमारूढा चन्द्रार्द्धकृतशेखरा।
अर्द्धास्तमितमार्त्तण्डे ध्येया विगतयौवना ॥ ६१ ॥

सायंकालीन ध्यान हेतु वे विगत यौवना, सती, श्वेतवर्णा, श्वेतवस्त्र धारण करने वाली, वृषभारूढ़ा, मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण किये हुए सरस्वती रूपा हैं। ये अपने चारों हाथों में क्रमशः वरमुद्रा, पाश, खर्पर तथा शूल धारण किये हुए हैं और त्रिनेत्रा हैं। इनका ध्यान अर्द्ध अस्तोन्मुखी सूर्यमण्डल के मध्य में करना चाहिए ॥ ६०–६१ ॥

इत्थं कालानुसारेण ध्यात्वा चाष्टोत्तरैः शतम्।
दशधा वा जपेन्नित्यं सर्वपापविशुद्धये ॥ ६२ ॥

इस प्रकार काल क्रमानुसार ध्यान करके प्रत्येक काल में १०८ अथवा १० बार गायत्री जप करने से साधक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥६२॥

इष्टदेवींस्ततो ध्यात्वा सूर्यमण्डलवासिनीम्।
गायत्रीमूलमन्त्रेण त्रिधा चार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ६३ ॥

अब सूर्यमण्डलस्थ इष्ट देवी का ध्यान करके उन्हें गायत्री मन्त्र से तीन बार अर्घ्य प्रदान करे ॥ ६३ ॥

संहारमुद्रया तस्मात्तेजः स्वहृदि विन्यसेत् । इसके अनन्तर संहारमुद्रा का प्रदर्शन देवी के सम्मुख करके उस तेज का न्यास अपने हृदय में करना चाहिए ।

पूजार्थं जलमादाय तीर्थं नत्वा यथाविधि ॥ ६४ ॥
देवीं ध्यायन् पठन् स्तोत्रं योगभूमिमथाविशेत् ।
प्रक्षाल्य पादौ पाणी च रक्तवस्त्रयुगस्ततः ॥ ६५ ॥
परिधायार्द्धचन्द्राभं सविन्दुं तिलकं चरेत् ।
चन्दनेन सुरक्तेन कुङ्कुमेनाथ वा पुनः ॥ ६६ ॥
सिन्दूरविन्दुसंयुक्तं रेखात्रयविराजितम् ।
देवीपादाम्बुजरजो ध्यात्वा मूलेन साधकः ।
पूजाधिकारी दुर्गाया यथासौ चन्द्रशेखरः ॥ ६७ ॥

इत्यन्नदाकल्पे पूजाप्रकरणे स्नानादिविवरणं नाम पञ्चमं पटलम् ।

इस प्रकार सन्ध्या समापन करके जलाशय (नदी आदि) को प्रणाम करके पूजा के लिए जल लाये । देवी का ध्यान तथा स्तव पाठ करके पूजा स्थान में आये और हाथ-पैर धोकर काषाय वस्त्र या रक्त वस्त्र पहनकर (एक अधोवस्त्र तथा एक उत्तरीय) रक्तचन्दन अथवा कुंकुम से तीन रेखा युक्त तिलक लगाये जिसमें बीच का बिन्दु कुंकुम से हो । इस तिलक को यह भावना करके लगाये कि यह देवी के चरणों की रज है । बिन्दु के मध्य में मूलमन्त्र छोटा-सा लिखे । इस प्रकार से वस्त्र और तिलक धारण करने वाला भगवती का पूजाधिकार प्राप्त कर लेता है ॥ ५४–६७ ॥

॥ पंचम पटल समाप्त ॥

षष्ठं पटलम्

श्रीशिव उवाच

ब्रह्मभैरव ! सर्वात्मन् ! श्रृणु ध्यानं मनोहरम् ।
यज्ज्ञात्वा साधकश्रेष्ठो देवीसारूप्यमाप्नुयात् ॥ १ ॥
त्रैलोक्यमोहिनीं सौम्यां बालामरुणविग्रहाम् ।
विचित्राम्बरभूषाढ्यां सदाष्टादशवत्सराम् ॥ २ ॥
नानासुरक्तभूषाभिर्मण्डितां चन्द्रशेखराम् ।
त्रिनेत्रामरसंव्यूहसंस्तुतां द्विभुजां पराम् ॥ ३ ॥
वामे माणिक्यचषकं कारणामृतपूरितम् ।
रत्नदर्वि दक्षकरे पलान्नघृतपूरिताम् ॥ ४ ॥
पाययन्ती शिवं तीर्थं भोजयन्तीं पलान्नकम् ।
पीत्वा भुक्त्वानन्दमयं नृत्यन्तं शशिशेखरम् ॥ ५ ॥
विलोक्य हृष्टां पद्मान्तः षट्कोणान्तर्निषेदुषीम् ।
मुक्ताहारलसत्तुङ्गकुचयुग्ममनोहराम् ॥ ६ ॥
सर्वसौन्दर्यवसतिं सर्वलावण्यशालिनीम् ।
विश्वाद्यां विश्वजननीं विश्वपालनतत्पराम् ॥ ७ ॥
दुःखदारिद्र्यदमनीं सुखमोक्षफलप्रदाम् ।
इत्थमानन्दनिलयां ध्यात्वा निजहृदम्बुजे ॥ ८ ॥

शिव कहते हैं — हे ब्रह्मभैरव ! मनोहर ध्यान तथा मंत्र का श्रवण करो। देवी के अंगों की आभा बाल सूर्य के समान अरुण वर्ण की है। वे हैं सौम्य दर्शना तथा त्रैलोक्य मोहिनी। वे नाना वर्ण के सूतों से रचित वस्त्र पहनती हैं। उनके अंगों में अनेक वर्ण के अलंकार शोभित हैं। वे १८ वर्षीय बालिका के समान स्फुटित यौवना हैं। देवी हैं चन्द्रशेखरा, रक्तभूषान्विता, द्विभुजा एवं त्रिनयना तथा देवताओं से संस्तुता भी हैं। उनके बायें हाथ में माणिक्य निर्मित सुधापूर्ण पानपात्र है और दाहिने हाथ में पलान्न तथा घृतपूर्ण रत्न जटित पात्र है। वे देवी शिव को सुधा तथा पलान्न का भक्षण करा रही हैं। शिव सुधापान तथा पलान्न भोजन से परितृप्त होकर परमानन्द से नृत्य कर रहे हैं। शिव के नृत्य दर्शन से देवी आनन्द से अधीर होकर मानो सिंहासन से एक बार तो उठ पड़ती हैं और एक बार व्यग्र भाव से बैठ जाती हैं। मुक्ता की माला से सुशोभित उन्नत स्तनद्वय मनोहर लग रहे हैं। लावण्य की खान, सौन्दर्य की आधार, विश्वप्रसविनी विश्वपालनतत्परा

जगदाधारा जगन्मयी दुखदारिद्रय का हरण करने वाली अन्नदा के मोक्षदायक, मोक्षद्वार चरण कमल का इस प्रकार से अपने हृदयकमल में ध्यान करना चाहिए ॥ १–८ ॥

पूजयेत् परया भक्त्या मानसैरुपचारकैः ।
हृत्पद्ममासनं दद्यात् सहस्रारच्युतामृतैः ॥ ९ ॥
पाद्यञ्च पादयोर्दद्यान्मनस्त्वर्घ्यं निवेदयेत् ।
तेनामृतेनाचमनं पानीयस्तेन च स्मृतम् ॥ १० ॥

तत्पश्चात् भक्तिभाव से मानसोपचार द्वारा पूजन करना चाहिए । मानस पूजा में हृदय पद्म को आसन माना जाता है । सहस्रार से क्षरित अमृतवारि से देवी के चरण कमलों को धोना चाहिए । इस समय साधक का मन ही अर्घ्य है । सहस्रार से क्षरित अमृत द्वारा उन्हें आचमन एवं अर्घ्य प्रदान करे ॥ ९–१० ॥

आकाशतत्वं वस्त्रं स्याद् गन्धं स्याद् गन्धतत्वकम् ।
चित्तम्प्रकल्पयेत् पुष्पं धूपं प्राणान् प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥
तेजस्तत्वञ्च दीपार्थे नैवेद्यं स्यात् सुधाम्बुधिः ।
अनाहतध्वनिर्घण्टां वायुतत्वञ्च चामरम् ॥ १२ ॥
सहस्रारम्भवेच्छत्रं शब्दतत्वञ्च गीतकम् ।
नृत्यमिन्द्रियकर्माणि चाञ्चल्यं मनसस्तथा ॥ १३ ॥
सुमेरवलां पद्ममालां पुष्पं नानाविधन्तथा ।
अमायाद्यैर्भावपुष्पैरर्चयेद् भावगोचराम् ॥ १४ ॥
अमायामनहङ्कारमरागममदन्तथा ।
अमोहकमदम्भञ्च अद्वेषाक्षोभको ततः ॥ १५ ॥
अमात्सर्यमलोभञ्च दशपुष्पं विदुर्बुधाः ।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ॥ १६ ॥
दया पुष्पं क्षमा पुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च पञ्चमम् ।
इति पञ्चदशैर्भावपुष्पैः सम्पूजयेच्छिवाम् ॥ १७ ॥

इस मानसपूजन में आकाशतत्व ही वस्त्र है, गन्धतत्व है गन्धचन्दन । चित्त ही पुष्प है । यह कल्पना करे । पंच प्राण ही पंचांग धूप है । तेजस्तत्व दीप है और सुधासमुद्र ही नैवेद्य है । घण्टा है अनाहतनाद । वायुतत्वरूपी चामर इस मानस पूजा में प्रयुक्त हो रहा है । सहस्रार की छत्र रूप से, शब्द तत्व की गीत रूप से तथा मन की चंचलता तथा इन्द्रिय समूह के समस्त कृत्य की कल्पना नृत्य रूप से करनी चाहिए । अमाया, अनहंकार, अराग, अमद, अमोह, अदंभ, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य तथा अलोभ रूपी दस भाव

की पुष्पमाला बनाकर अन्नदा देवी को पहनाना चाहिए। अहिंसा, इन्द्रिय-निग्रह, दया, क्षमा तथा ज्ञान भी पुष्प हैं। उपरोक्त १० तथा इन ५ पुष्पों से शिवसुन्दरी अन्नदा का पूजन मानसिक रूप से किया जाता ॥ ११–१७ ॥

सुधाम्बोधिं मांसशैलं मत्स्यशैलन्तथैव च।
मुद्राराशिं सुरक्तञ्च घृताक्तं परमान्नकम् ॥ १८ ॥
कुलामृतञ्च तत् पुष्पं पञ्च तत् क्षालनोदकम्।
कामक्रोधौ छागवाहौ बलिन्दत्वा प्रपूजयेत् ॥ १९ ॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गगनेऽथ जलान्तरे।
यद्यत् प्रमेयन्तत् सर्वं नैवेद्यार्थन्निवेदयेत् ॥ २० ॥

सुधा समुद्र ही मांस तथा मत्स्य पर्वत है। मुद्राराशि ही सघृतपायस है। कुलामृत है उनके क्षालन का जल एवं त्रिभुवन जितनी भी प्रमेय वस्तु है वह सब उनका नैवेद्य है। यह कल्पना करनी चाहिए। कामरूपी बकरा एवं क्रोध रूपी महिष की बलि देकर अन्नदा का पूजन करे ॥ १८–२० ॥

पातालभूतलव्योमचारिणो विघ्नकारिणः।
तांस्तानपि बलिन्दत्वा निर्द्वन्द्वो जपमारभेत् ॥ २१ ॥

अब पाताल-भूतल तथा व्योमस्थ समस्त विघ्नकर्ताओं को बलि देकर अन्नदा को परितृप्त करते हुए निर्द्वन्द्व होकर जप करना चाहिए ॥ २१ ॥

माला पञ्चाशिकाः प्रोक्ताः सूत्रं शक्तिशिवात्मकम्।
ग्रन्थिः स्यात् कुण्डलीशक्तिर्नादान्ते मेरुसंस्थितिः ॥ २२ ॥
सविन्दुं वर्णमुच्चार्य मूलमन्त्रं समुच्चरेत्।
अकारादिहकारान्तमनुलोम इति स्मृतः ॥ २३ ॥
पुनर्हकारमारभ्य श्रीकण्ठान्तं मनुञ्जपेत्।
विलोम इति विख्यातः क्षकारं केवलं जपेत् ॥ २४ ॥
अष्टवर्गादष्टवर्णैः सहमूलमथाष्टकम्।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा समर्प्य प्रणमेद्धिया ॥ २५ ॥
सर्वान्तरात्मनिलये स्वान्तर्ज्योतिः स्वरूपिणी।
गृहाणान्तर्जपं मातरन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥
समर्प्य जपमेतेन पञ्चाङ्गं प्रणमेद्धिया।
अन्तर्यागं समाप्यैवं बहिर्यजनमारभेत् ॥ २७ ॥

इत्यन्नदाकल्पे अन्तर्यजनं नाम षष्ठं पटलम्।

अ से ल पर्यन्त ५० वर्ण की माला की कल्पना करके शिवशक्त्यात्मक सूत्र द्वारा कुण्डलिनी को ग्रथित करके इन वर्णों पर बिन्दु लगाकर इनका उच्चारण करके मूलमंत्र का उच्चारण करें।

(अ से अः पर्यन्त अवर्ग, क से ङ तक कवर्ग, च से ञ पर्यन्त चवर्ग, ट से ण तक टवर्ग, त से न पर्यन्त तवर्ग, प से म पर्यन्त पवर्ग, य से व पर्यन्त यवर्ग, श से ह तक शवर्ग ५० वर्ण)।

पुनः विलोम भाव से ह से प्रारम्भ करके अ पर्यन्त ५० वर्ण माला का जप करे। इस अनुलोम-विलोम मातृका का एक जप ही १०० जपों के बराबर होता है। इस माला का सुमेरु है 'क्ष' वर्ण।

इसके अनन्तर अष्टवर्ग का आठ बार जप करने से पूर्वोक्त १०० जप को मिलाकर १०८ जप हो जाता है। (अष्टवर्ग = अं कं चं टं तं पं यं शं) तत्पश्चात् मानसिक प्रणाम एवं जप विसर्जन के उपरान्त बाह्यपूजन प्रारम्भ करना चाहिए ॥ २२–२७ ॥

छठा पटल समाप्त।

सप्तमं पटलम्

श्रीशिव उवाच

विशेषार्घ्यस्य संस्कारः कथ्यते श्रृणु भैरव ! ।
यस्य स्थापनमात्रेण त्रैलोक्यं स्थापितं भवेत् ॥ १ ॥
दृष्ट्वार्घ्यपात्रं योगिन्यो ब्रह्माद्या देवता गणाः ।
भैरवा अपि नृत्यन्ति प्रीताः सिद्धिन्ददत्यपि ॥ २ ॥

शिव कहते हैं—हे भैरव ! अब विशेष अर्घ्यस्थापन प्रणाली कही जा रही है। उसे सुनो। इसके स्थापन मात्र से त्रैलोक्य भी स्थापित हो जाता है। अर्घ्यपात्र की ओर दृष्टि करने से योगिनीगण, ब्रह्मादि देवतागण तथा भैरव गण प्रीति भरे चित्त से नृत्य करने लगते हैं और समस्त सिद्धियों का दान करने लगते हैं ॥ १–२ ॥

स्ववामे पुरतो भूमौ सामान्यार्घ्योदकेन च ।
मायागर्भत्रिकोणञ्च वृत्तञ्च चतुरस्रकम् ॥ ३ ॥
विलिख्य पूजयेत्तत्र मायाबीजपुरःसरम् ।
ङेन्तामाधारशक्तिञ्च नमःशब्दावसानिकाम् ॥ ४ ॥
नमसाधारमभ्युक्ष्य तत्र संस्थापयेद् बुधः ।
कालं बिन्दुसमायुक्तं ङेयुतं वह्निमण्डलम् ॥ ५ ॥
दशकलात्मने पश्चान्नमोऽन्तेन च पूरयेत् ।
अस्त्रेण पात्रं प्रक्षाल्य आधारं विनिवेशयेत् ॥ ६ ॥
श्रीकण्ठ विन्दुना युक्तं ङेयुतं चार्कमण्डलम् ।
द्वादशान्ते कलाशब्दादात्मने नम इत्यपि ॥ ७ ॥
पूजयित्वार्घ्यपात्रन्तु मूलेनैव प्रपूजयेत् ।
त्रिभागं तीर्थतोयेन कुलप्रक्षालनेन च ॥ ८ ॥
विमलेन जलेनापि सुगन्धिमिलितेन च ।
षष्ठस्वरं बिन्दुयुतं ङेऽन्तः स्याच्चन्द्रमण्डलम् ॥ ९ ॥
षोडशादिकलाशब्दादात्मने नम इत्यपि ।
पूजयेत् सलिले विद्यास्तत्र मूलं समुच्चरन् ॥ १० ॥
दूर्वाक्षतं गन्धपुष्पं जपापुष्पञ्च बर्बराम् ।
निक्षिप्यावाहयेत्तीर्थं क्रौं मन्त्रेण च देशिकः ॥ ११ ॥

पहले अपने बायीं ओर मृत्तिका में सामान्य अर्घ्य जल द्वारा अभ्युक्षण

करके माया गर्भ (ह्रीं) त्रिकोण अंकित करके (अर्थात् त्रिकोण के अन्दर ह्रीं अंकित करके) उसके बाहर पहले वृत्त, उसके बाहर चतुरस्र बनाये और 'ह्रीं आधारशक्तये नमः' कहकर पूजन करे। तत्पश्चात् 'नमः' मन्त्र से आधार पात्र को प्रक्षालित करके इसे त्रिकोण पर स्थापित करके 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' मन्त्र से पूजन करके 'फट्' मन्त्र से अर्घ्यपात्र का प्रक्षालन करके 'अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' का उच्चारण करके मूलमन्त्र द्वारा पूजन करना चाहिए। तदनन्तर मद्य तथा कुल प्रक्षालित जल द्वारा अर्घ्यपात्र के त्रिभाग को भरे और सुगन्ध पुष्प मिश्रित विमल जल द्वारा अर्घ्यपात्र के चौथाई खाली भाग को भरकर उसके ऊपर 'ॐ चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' मन्त्र से पूजन करना होगा। तत्पश्चात् मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए दूर्वा, अक्षत, तण्डुल, गन्ध, पुष्प, जपापुष्प अथवा धतूरा के फूलों का अर्घ्य देकर 'क्रौं' मन्त्र का उच्चारण करते हुए जल निक्षेप करे॥ ७–११॥

रविमण्डलमध्यस्थं मुद्रयाङ्कुशरूपया।
कवचेनावगुण्ठ्याथ छोटिकाभिस्ततः परम्॥ १२॥
अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य वं धेन्वा चामृतीकृतम्।
संज्ञाख्यमुद्रया मत्स्यरूपया दशधा जपेत्॥ १३॥
मूलमन्त्रं ततस्तत्र देवतावाहनञ्चरेत्।
मूलेन पुष्पाञ्जलिभिः पूजयेत्तत्र देवताम्॥ १४॥

जल निक्षेप अंकुशमुद्रा द्वारा रविलण्डल[1] के मध्य में करे। तदनन्तर 'हुं' मन्त्र से छोटिका को अवगुण्ठन मुद्रा प्रदर्शन करके दश दिशाओं में फट् मन्त्र से संरक्षण, 'वं' मन्त्रोच्चारण तथा धेनुमुद्रा प्रदर्शन द्वारा अमृतीकरण तथा मत्स्यमुद्रा से आच्छादन करते हुए मूलमन्त्र का १० बार जप करके देवी का आवाहन करे तथा देवी को पाँच पुष्पांजलि प्रदान करे॥ १२–१४॥

मायया योनिमुद्राञ्च दर्शयेत्तदनन्तरम्।
इत्यर्घ्यसाधनं प्रोक्तं मन्त्रिणे मन्त्रसिद्धिदम्॥ १५॥

अब 'ह्रीं' का उच्चारण करते हुए योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए। इस प्रकार से साधक को सिद्धि देने वाली अर्घ्यसाधन प्रणाली का उपदेश दिया गया है॥ १५॥

पूजासमाप्तिपर्यन्तं चालयेन्न कदाचन।
धूपदीपौ प्रदर्श्याथ प्रणमेद्देवताधिया॥ १६॥

---

१. रविमण्डल अर्थात् 'अं अर्कमण्डलाय दशकलात्मने नमः' कहकर जल निक्षेप करना।

तदम्बु प्रोक्षणीपात्रे क्षिपेत् किञ्चिच्च साधकः ।
आत्मानं योगवस्तूनि प्रोक्षयेत्तेन मन्त्रवित् ॥ १७ ॥

इत्यन्नदाकल्पे विशेषार्घ्यसंस्कारो नाम सप्तमं पटलम् ।

पूजा समाप्ति पर्यन्त अर्घ्यपात्र को हटाना नहीं चाहिए । धूपदीप प्रदर्शन करके देवता को प्रणाम करे और अर्घ्यपात्र का जल प्रोक्षणीपात्र में रखकर अपने शरीर तथा योगवस्तु आदि को भी जल से धो दे ॥ १६–१७ ॥

॥ सप्तम पटल समाप्त ॥

अष्टमं पटलम्

श्रीशिव उवाच

ततो लिखेद् यन्त्रराजं समस्तपुरुषार्थदम् ।
योनियुग्मं लिखेत् विद्वान् शिवशक्त्यात्मकं ततः ॥ १ ॥
तन्मध्ये विलिखेन्मायां तद्बाह्ये वृत्तयुग्मकम् ।
तयोर्मध्ये युग्मयुग्मक्रमात् षोडशकेशरम् ॥ २ ॥
तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं तद्बाह्ये भूपुरं लिखेत् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं कोणेदृष्टत्रिशूलकम् ॥ ३ ॥
ज्ञात्वैव मुक्तिमाप्नोति यन्त्रराजं न संशयः ।
स्वर्णे वा राजते ताम्रे कुण्डगोलविलेपिते ॥ ४ ॥
स्वयम्भुकुसुमैर्युक्ते चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।
रक्तेन चन्दनेनाथ विलिप्ते सुमनोहरे ॥ ५ ॥
शलाकया स्वर्णमय्या बिल्वकण्टककेन वा ।
मूलं समुच्चरन्मन्त्री चक्रराजं समुद्धरेत् ॥ ६ ॥
अथवोत्कीर्णरेखाभिः प्रवालविद्रुमे तथा ।
वैदूर्ये कारयेद्यन्त्रं कारुकेण सुशिल्पिना ॥ ७ ॥

श्रीशिव कहते हैं—अब समस्त पुरुषार्थप्रद यन्त्र का अंकन करे। उसकी विधि यह है—प्रथमतः शिवशक्त्यात्मक योनियुग्म (ऊर्ध्वमुखी तथा अधोमुखी त्रिकोण एक दूसरे से संयोजित) रूपी त्रिभुजद्वय अंकित करे। उसमें माया बीज (ह्रीं) अंकित करके उसके बाहर दो वृत्त अंकित करे जिनमें दो-दो करके १६ केशर बने हों। वृत्त के बाहर अष्टदल पद्म तथा उसके बाहर भूपुर का अंकन करे। भूपुर को चार द्वारों से (चारों ओर एक-एक द्वार से) अंकित करके प्रत्येक कोण में दो-दो त्रिशूल का अंकन करना चाहिए। यह यन्त्र स्वर्ण, चाँदी अथवा ताम्र निर्मित पात्र के ऊपर चन्दन, कुंकुम, रक्त-चन्दन अथवा कुण्ड गोल[1] किं वा स्वयम्भु कुसुम (स्वयम्भु कुसुम = जब

---

१. जीवद्भर्त्तृकनारीणां पञ्चमं कारयेत् प्रिये ।
तस्या भगस्य यद्द्रव्यं तत् कुण्डोद्भवमुच्यते ॥
मृतभर्त्तृकनारीणां पञ्चमञ्चैव कारयेत् ।
तस्या भगस्य यद् द्रव्यं तद् गोलोद्भवमुच्यते ॥

(समयाचारतन्त्र, द्वितीय पटल)

प्रथम बार कन्या को रजोदर्शन हो वह रजः (रक्त) ही स्वयंभु कुसुम है) से मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए स्वर्ण की शलाका अथवा बेल वृक्ष के काँटे से इस चक्रराज का अंकन करना चाहिए। अथवा अच्छे शिल्पकार से इसे स्फटिक, प्रवाल अथवा वैदूर्य रत्नखण्ड के ऊपर इसे अच्छी तरह से उत्खचित कराये ॥ १–७ ॥

शुभप्रतिष्ठितं कृत्वा स्थापयेद्भवनान्तरे।
नश्यन्ति दुष्टभूतानि ग्रहरोगभयानि च ॥ ८ ॥
पुत्रपौत्रसुखैश्वर्यैर्मोदते तस्य मन्दिरम्।
सदान्नसुखसमृद्धिर्दुःखं तत्र न तिष्ठति ॥ ९ ॥
दाता भोक्ता यशस्वी च भवेद्यन्त्रप्रसादतः।
एवं यन्त्रं समुद्धृत्य पूरतः प्रोक्तमण्डले ॥ १० ॥
रत्नसिंहासने रम्ये संस्थाप्य यजनञ्चरेत्।
आधारशक्ति कूर्मञ्च शेषं पृथ्वीमनन्तरम् ॥ ११ ॥
सुधासिन्धुं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहन्ततः।
परितः पारिजातानां वनानि रत्नभूरुहाम् ॥ १२ ॥
अभ्यन्तर्मणिमाणिक्यवेदिकां सुपरिष्कृताम्।
रत्नसिंहासनं तत्र पूजयेत् साधकोत्तमः ॥ १३ ॥

अब उस यन्त्र को विधि विधान से सुप्रतिष्ठित करके घर में स्थापित करना चाहिए। इस यन्त्रराज के प्रभाव से रोगभय, ग्रह तथा भूतभय दूर होता है। पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि, अन्न वृद्धि तथा सुख समृद्धि प्राप्त होती है। साधक इस यन्त्रराज के प्रभाव से दाता, भोक्ता तथा यशस्वी हो जाता है। मनोहर सिंहासन पर यन्त्र स्थापित करके पूजन करना चाहिए। प्रथमतः आधारशक्ति से लेकर कूर्म, शेष, पृथ्वी, सुधासमुद्र, मणिद्वीप में निर्मित चिन्तामणि गृह, उसके चारों ओर स्थित पारिजातादि वृक्ष और वहाँ माणिक्यों से रचित रत्नवेदिका का पूजन करना चाहिए ॥ ८–१३ ॥

धर्मं ज्ञानं तथैश्वर्यं वैराग्यं क्रमतो यजेत्।
पीठवह्न्यादिकोणेषु दिक्षु पूर्वादिकन्ततः ॥ १४ ॥
अधर्मञ्च तथाऽज्ञानमनैश्वर्यमतः परम्।
अवैराग्यं ततो मन्त्री पीठगात्रेषु पूजयेत् ॥ १५ ॥
मध्ये चानन्दकन्दञ्च सम्बिन्नालं ततः परम्।
प्रकृत्यात्मकपत्रञ्च विकारमेव केशरम् ॥ १६ ॥
सर्वतत्वात्मकं पद्मं सोमं सूर्यं हुताशनम्।
पूजयेन्मण्डलं तेषां कलाभिः सह मन्त्रवित् ॥ १७ ॥

आं आत्मने नमः अं अन्तरात्मने नमः ।
पं परमात्मने नमो मायाबीजपुरःसरम् ॥ १८ ॥
ज्ञानात्मने नमः पश्चात् पीठशक्ति समर्चयेत् ॥ १९ ॥
ततस्तत्कर्णिकामध्ये पूजयेत् सर्वमङ्गलाम् ।
ह्रीं बीजेनासनं दत्त्वा मूर्त्ति मूलेन कल्पयेत् ॥ २१ ॥
तस्यां मूर्त्तौ यजेद्देवीं ध्यानावाहनपूर्वकम् ॥ २२ ॥

इत्यन्नदाकल्पे पीठार्चनं नाम अष्टमं पटलम् ।

तदनन्तर धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य, वैराग्य-अवैराग्य, की पूजा पीठ पर तथा अग्नि आदि कोण में क्रमशः करनी चाहिए। सिंहासन के मध्यभाग में देवी के पादपद्म को धारण करने वाले पद्म का कन्द है आनन्द स्वरूप, नाल है संवित्शक्ति, उसकी पंखुड़ियाँ हैं, प्रकृति पद्मकेशर है वैकारिक तत्व इस सर्वतत्वात्मक पद्म में सोमकला, अग्निकला तथा सूर्यकला, आत्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा का पूजन करना चाहिए। पद्मकेशर में जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री प्रभृति पीठ शक्तियों का पूजन करे। पद्म की कर्णिका अर्थात् बीजकोण में सर्वमंगला अन्नपूर्णा का ध्यान आवाहनादि करके मायाबीज 'ह्रीं' द्वारा आसन प्रदान करके मूलमन्त्र द्वारा मूर्त्ति की कल्पना करके उस मूर्त्ति में देवी का पूजन करना चाहिए ॥ १४–२२ ॥

अष्टम पटल समाप्त ।

नवमं पटलम्

श्रीशिव उवाच

कलशस्थापनं वक्ष्ये चक्रानुष्ठानमेव च।
येनानुष्ठितमात्रेण देवता सुप्रसीदति ॥ १ ॥
मन्त्रसिद्धिर्भन्वेनॄणां कामसिद्धिश्च जायते।
कार्यसिद्धिर्भक्तिसिद्धिर्भावसिद्धिः प्रजायते ॥ २ ॥

श्रीशिव कहते हैं—कलस स्थापन तथा चक्रानुष्ठान कहता हूँ। जिस अनुष्ठान से मनुष्य को मन्त्रसिद्धि, कामनासिद्धि, भक्तिसिद्धि तथा भावसिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १–२ ॥

कलां कलां गृहीत्वा च देवानां विश्वकर्मणा।
निर्मितोऽयं सुरैर्यस्मात् कलशस्तेन उच्यते ॥ ३ ॥

देवताओं ने अपने-अपने अंश को प्रदान करके विश्वकर्मा द्वारा इसका निर्माण कराया है। इसी कारण इसे कलस कहते हैं ॥ ३ ॥

षट्त्रिंशदङ्गुलायामं षोडशाङ्गुलमुच्चकम्।
कण्ठं स्याच्चतुरङ्गुलम् मूलं तस्य षडङ्गुलम्।
सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यजं काचसम्भवम्।
पाषाणं मृण्मयं वापि घटमव्रणशालिनम्।
कारयेद्देवताप्रीत्यै वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ४ ॥
सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदं तथा।
ताम्रं प्रीतिकरं प्रोक्तं पाषाणं स्तम्भकर्मणि।
मृण्मयं सर्वकार्येषु सुवक्त्रं सुपरिष्कृतम् ॥ ५ ॥

इसका वेध ३६ अंगुल, ऊँचाई १६ अंगुल, कण्ठ ४ अंगुल एवं मूलभाग ६ अंगुल का होना चाहिए। स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, काँसा, काँच, पाषाण अथवा मृत्तिका निर्मित निर्दोष घट देवता की प्रीति के लिए आधार पर स्थापन करना चाहिए। किन्तु इसके लिए वैभव प्रदर्शन न करे। सुवर्ण घट भोगप्रद, चाँदी का घट मोक्षप्रद, ताम्र का घट प्रीतिप्रद, कांस्य का पुष्टिवर्द्धक, कांच निर्मित घट वशीकरणप्रद, पाषाणघट स्तम्भन कार्य में सिद्धिप्रद है तथा मिट्टी का घट समस्त कार्यों के लिए उत्तम है ॥ ४–५ ॥

स्ववामभागे षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम्।
तद्बहिर्वृत्तमालिख्य चतुरस्रं ततो बहिः।

सिन्दूररजसा मन्त्री रक्तचन्दनकेन च।
निर्माय मण्डलं तत्र यजेदाधाररूपिणीम्।
मायामाधारशक्तिञ्च ङेनमोऽन्तां समुद्धरेत्॥ ६॥
नमसा क्षालिताधारं स्थापयेद्देवताधिया।
रक्तचन्दनसिन्दूररक्तमाल्यानुलेपनैः ॥ ७॥
भूषयित्वा यजेत्तत्र पूर्ववन्मण्डलं रवेः।
मूलं समुच्चरेन्मन्त्री तीर्थतोयैःप्रपूरयेत्।
अन्नोद्भवैश्च गुडजैर्माध्वीकैर्वा सुरक्तकैः।
पूजयेत् पूर्ववत् सोममण्डलं तत्र कारणे॥ ८॥

अपने वामभाग में षट्कोण बनाकर उसमें बिन्दु अंकित करके उस (षट्कोण) के बाहर वृत्त तथा उसके बाहर चतुरस्र अंकित करके सिन्दूर किं वा रक्तचन्दन से उसे रँगे। तत्पश्चात् 'आधारशक्तये नमः' कहकर पूजन करे एवं 'नमः' कहकर आधार पात्र का प्रक्षालन करके वहाँ रक्खे। तदनन्तर रक्तचन्दन, सिन्दूर तथा रक्तमाला द्वारा घट को आभूषित करके 'ॐ अर्क-मण्डलाय दशकलात्मने नमः' कहकर पूजन करे तथा मूलमन्त्र का उच्चारण करके रक्तवर्ण अन्न से उत्पन्न, गुड़ से उत्पन्न अथवा माध्वीक मद्य द्वारा घट का पूजन करके मद्य के ऊपर सोममण्डल का पूजन करे॥ ६–८॥

ततः पञ्चाकृतिं कृत्वा प्रणमेत् पञ्चमुद्रया।
फटा दर्भेण सन्ताड्य हुं बीजेनावगुण्ठनात्॥
ह्रीं दिव्यदृष्टया संवीक्ष्य नमसाभ्युक्षणञ्चरेत्।
मूलेन गन्धदानं त्रिः पञ्चीकरणमीरितः॥ ९॥

अब पंचीकरण करके पंचमुद्रा से प्रणाम करे। फट् मन्त्र से कुश द्वारा द्रव्य (पूजा द्रव्य) का सन्ताडन करे 'हुं' मन्त्र जपते हुए अवगुण्ठन मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए। 'ह्रीं' मन्त्र का उच्चारण करके दिव्यदृष्टि द्वारा घटदर्शन, 'नमः' कहकर अभ्युक्षण तथा मूलमन्त्र से गन्ध का दान करना ही पंचीकरण है। इसे तीन बार करे॥ ९॥

चतुरस्रा सुवृत्तासा सम्पुटा च पुटाञ्जलिः।
योनिमुद्रेतिविख्याता मुद्राः पञ्च प्रकीर्त्तिताः॥
ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं सः स्वरूपं प्रणमेत् पञ्चभिस्ततः।
प्रणवेन जपापुष्पं दर्भं दत्वा विशोधयेत्॥ १०॥

क्रमशः चतुरस्रा, सुवृत्ता, सम्पुटा, पुटांजलि तथा योनिमुद्रा करके 'ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं सः' कहकर प्रणाम करे। अब प्रणव मन्त्र पढ़कर जपापुष्प तथा दर्भ अर्पित करके उसका विशोधन करना चाहिए॥ १०॥

एकमेवादिभिर्मन्त्रैः काव्यशापविमोचनम् ।
वारुणेन च बीजेन षड्दीर्घस्वरभाजिना ॥
ब्रह्मशापविशब्दान्ते मोचितायै पदं वदेत् ।
सुधादेव्यै नमः पश्चात् दशधा ब्रह्मशापलुक् ॥ ११ ॥
अङ्कुशं दीर्घषट्केन युतं श्रीमाययान्वितम् ।
सुधाशब्दात् कृष्णशापं मोचयेति पदन्ततः ॥
अमृतं श्रावयेद् द्वन्द्वं द्विठान्तोऽयं मनुस्ततः ।
कृष्णशापविमुक्तिः स्यात् सूर्यवारं जपेद्यदि ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर—

'एकमेव परंब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्' ॥
'सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्' ॥
'देवानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन तन्त्रेण मे देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु' ॥

इन मन्त्रों द्वारा सुरा को अभिमन्त्रित करके 'ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः' का द्रव्य के ऊपर १० बार जप करके ब्रह्मशाप विमोचन करे। अब 'शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः' का द्रव्य के ऊपर १० बार जप करके शुक्रशाप विमोचन करे और 'ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः सुधा कृष्णशापं विमोचय श्रावय श्रावय स्वाहा' का जप-जप पर १२ बार करके कृष्णशाप का मोचन करे ॥ ११–१२ ॥

हंस इत्यादिना चैव ऋचाशुद्धिं त्रिधाचरेत् ।
तस्मिन्नानन्दशब्दादिभैरवं भैरवींस्तथा ।
ध्यात्वा प्रपूजयेन्मन्त्री तत्तन्मन्त्रेण देशिकः ।
हसक्षमलशब्दान्ते वरयूं मिलितं लिखेत् ।
आनन्दभैरवं ङेऽन्तं वषडन्तमनुर्मतः ।
अस्यास्यं विपरीतञ्च श्रवणे वामलोचनाम् ।
सुधादेव्यै वौषडन्तो मन्त्रस्तस्याः प्रपूजने ।
त्रिर्गन्धपुष्पैः सम्पूज्य ध्यायेत्तत्र परां कलाम् ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर 'ॐ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरीक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोनसत् नृषद्वृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्'। मन्त्र से तीन बार

सुरा को अभिमन्त्रित करके उस पर आनन्दभैरव भैरवी का ध्यान करके 'ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वषट्' मन्त्र से आनन्दभैरव का और 'ह स क्ष म य ल व र यूं सुधादेव्यै वौषट्' से आनन्दभैरवी का पूजन करे। गन्धपुष्पादि से तीन बार पूजन करना चाहिए ॥ १३ ॥

अकथादित्रिरेखीयां हलक्षत्रयभूषिताम्।
सामरस्यं तयोस्तत्र ध्यात्वा तदमृतं प्लुतम्।
देवीं विचिन्त्य तस्योद्ध्वें चाष्टध्याप्यामृतं जपेत्।
अष्टधा मूलमन्त्रञ्च जपेद्धृत्वा घटं पुनः।
मूलेन देवताबुद्धया दत्वा पुष्पाञ्जलिं ततः।
दर्शयेद् धूपदीपौ च घण्टावादनपूर्वकम् ॥ १४ ॥
इत्थं तीर्थस्य संशुद्धिः सर्वदा देवपूजने।
होमे च तर्पणे चैव कृत्वा शुद्धिं लभेद् ध्रुवम् ॥ १५ ॥

सुरा के ऊपर के भाग में त्रिकोण चक्र अंकित करके उस पर तीन पंक्ति में अकारादि षोडशवर्ण, क से त पर्यन्त षोडशवर्ण तथा थ से स पर्यन्त षोडश वर्ण लिखकर हं लं क्षं अंकित करे। अब इस द्रव्य में शिवशक्ति का ध्यान करके सुरा में अमृत की भावना करे। पुनः घट का स्पर्श करके आठ बार मूलमन्त्र का जप करना चाहिए। अब इसे देवता मानकर मूलमन्त्र से पुष्पांजलि प्रदान करके घंटानाद करते हुए धूप दीपादि दिखाये। यह है द्रव्य शुद्धि। यह द्रव्यशुद्धि देवपूजन, होम तथा तर्पण में करना अत्यन्त उपयोगी है ॥ १४–१५ ॥

शुद्धिं मीनं तथा मुद्रां पञ्चमीकुसुमामृतम्।
फटाभ्युक्ष्य वायुवह्निबीजाभ्यां त्रिर्निमन्त्रयेत्।
कवचेनावगुण्ठ्याथ रक्षणञ्चास्त्रमन्त्रतः।
वं धेन्वा चामृतीकृत्य स्वमूलं सप्तधा जपेत्।
इति शुद्धयादिसंस्कारैः ऋचा वा शोधनञ्चरेत् ॥ १६ ॥

शोधित द्रव्य मत्स्य, मुद्रा (भ्रष्टवस्तु) तथा स्वयम्भू पुष्प का फट् मन्त्र से अभ्युक्षण तथा वं तथा रं बीज से तीन बार निमन्त्रण, हुं मन्त्र से अवगुण्ठन, फट् मन्त्र से रक्षण तथा वं मन्त्र से अमृतीकरण करके अपने मूलमन्त्र का सात बार जप करे। यह शुद्धि संस्कार एक बार अथवा तीन बार करना चाहिए ॥ १६ ॥

अकृत्वा पञ्चतत्वानां शोधनं पूजनञ्चरेत्।
वृथा तस्य भवेत् पूजा देवीशापः प्रजायते।
इह लोके दरिद्रः स्यात् परे च नरकं व्रजेत्।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्वानां शोधनञ्चरेत् ।
ततः पूजा प्रकर्त्तव्या भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये ॥ १७ ॥

इत्यन्नदाकल्पे तीर्थादिशोधनं नाम नवमं पटलम् ।

जो व्यक्ति पंचतत्व का इस प्रकार से शोधन किये विना पूजा करता है उसकी पूजा निष्फल होती है और उसे देवी का शाप मिलता है। अतः मुक्ति तथा भुक्ति की प्राप्ति के लिए समस्त प्रयत्नों से यह शोधन कार्य अवश्य करना चाहिए ॥ १७ ॥

नवम पटल समाप्त ।

दशमं पटलम्

श्रीशिव उवाच

ततोऽष्टादशवर्षीयां नारीमानीय मन्त्रवित् ।
गौराङ्गीं यौवनोन्मत्तां सुवेशीं चारुहासिनीम् ॥ १ ॥
विचित्ररक्तवसनां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
गुरुदेवरतां भक्तां दीक्षितां कुलजां शुभाम् ॥ २ ॥
स्वकान्तां परकान्तां वा स्व वामे स्थापयेद् बुधः ।
तस्या गात्रे स्वकल्पोक्तान् न्यासान् विन्यस्य मन्त्रवित् ॥ ३ ॥

श्रीशिव कहते हैं—अब १८ वर्ष की गौरांगी, यौवनयुक्त, अच्छे वेशवाली, मृदु तथा मन्द हास्य से युक्त, विचित्र रक्तवर्ण के वस्त्रों से युक्त, समस्त आभूषण धारण करने वाली, गुरुदेव के प्रति भक्ति रखने वाली, दीक्षिता, अच्छे कुल में उत्पन्न तथा शुभ दर्शना अपनी पत्नी अथवा परकीया स्त्री को लाकर अपने बायीं ओर बैठाये ॥ १–३ ॥

अभिषिञ्चेत् कारणेन विशेषार्घ्योदकेन च ।
आदौ बालां समुच्चार्यं त्रिपुराय समुच्चरेत् ॥ ४ ॥
नमः शब्दं समुच्चार्य इमां शक्ति ततो वदेत् ।
पवित्रीकुरु शब्दान्ते मम शक्ति कुरु द्विठः ॥ ५ ॥

अब मन्त्रों का ज्ञाता उस स्त्री के शरीर पर अपनी गुरु परम्परा के अनुसार न्यास करके उसका अभिषेक मद्य तथा विशेष अर्घ्य जल से करे । यह विशोधन कृत्य 'ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्ति पवित्रीकुरु कुरु स्वाहा' मन्त्र से करना चाहिए ॥ ४–५ ॥

शक्तिशुद्धिरिति ख्याता परकीयाविशोधने ।
अनेन मनुनाषिञ्च्य परकीयां विशोधयेत् ॥ ६ ॥

यह शक्ति शुद्धि है । इसका प्रयोग परकीया स्त्री के विशोधनार्थ होता है । (अपनी पत्नी के विशोधन के लिए नहीं होता) । इस मन्त्र से परकीया स्त्री शुद्ध हो जाती है ॥ ६ ॥

रममाणो भवेन्नित्यं सर्वसिद्धिमुपालभेत् ।
अदीक्षिता यदा नारी कर्णे मायां त्रिरुच्चरेत् ॥ ७ ॥

ऐसी रमणी से नित्य रमण करने पर समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है ।

यदि स्त्री दीक्षिता न हो, तब तीन बार 'ह्रीं' मन्त्र का उच्चारण उसके कान में करना चाहिए ।। ७ ।।

श्रीपात्रस्थापनं कुर्यात् तया सह सुसाधकः ।
अथात्मयन्त्रयोर्मध्ये मायागर्भत्रिकोणकम् ।। ८ ।।
वृत्तं षट्कोणमालिख्य चतुरस्रं ततो बहिः ।
चतुरस्रे पूर्णशैलमुड्डीयानस्तथैव च ।। ९ ।।
जालन्धरं कामरूपं स चतुर्थीं नमोऽन्तकम् ।
निजनामादिबीजाढ्यं पूजयेत् साधकोत्तमः ।। १० ।।

अब साधक को स्त्री के साथ श्रीपात्र की स्थापना करनी चाहिए । इसकी प्रणाली इस प्रकार से है । अपने आसन तथा यन्त्र के मध्य में 'ह्रीं' मन्त्र के गर्भ त्रिकोण, उसके बाहर क्रमशः वृत्त, षट्कोण तथा चतुरस्र यन्त्र अंकित करे । चतुरस्र में पूर्णशैलाय नमः, उड्डीशानाय नमः, जालन्धराय नमः तथा कामरूपाय नमः कहकर पूजन करना चाहिए । इसके अनन्तर देवी के बीज से युक्त नाम को कहते हुए पूजन करे ।। ८–१० ।।

षट्कोणेषु षडङ्गानि मूलेनैव त्रिकोणकम् ।
मायामाधारशक्तिञ्च ङेनमोऽन्तां प्रपूजयेत् ।। ११ ।।
नमसा क्षालिताधारं तत्र संस्थाप्य पूर्ववत् ।
त्रिकोणवृत्तषट्कोणं विलिखेत्तत्र साधकः ।। १२ ।।
षट्कोणेषु षडङ्गानि मूलेनैव त्रिकोणकम् ।
वृत्तोपरि यजेद्वह्नेः कलयादिभिरक्षरैः ।। १३ ।।
धूम्रार्चिरूष्मा ज्वालिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे अपि ।। १४ ।।
सचतुर्थीनमोऽन्ताः स्युर्दशधर्मप्रदायिकाः ।
मं वह्निमण्डलायेति ततो दशकलात्मने ।। १५ ।।

षट्कोण के समस्त ६ कोणों की पूजा तथा मूलमन्त्र से त्रिकोण की पूजा करके आधारशक्ति का पूजन करना चाहिए । 'नमः' शब्द का उच्चारण करके आधार पात्र का प्रक्षालन करे और पूर्ववत् त्रिकोण, वृत्त तथा षटकोणों से युक्त पात्र का स्थापन करके मूलमन्त्र से षट्कोण के ६ अंगों का और त्रिकोण तथा वृत्त का पूजन इन मन्त्रों से करे—यं धूम्रार्चिषे नमः, वं ऊष्मायै नमः, लं ज्वालिन्यै नमः, रं ज्वालिन्यै नमः, शं बिन्दुलिङ्गिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः, सं स्वरूपायै नमः, हं कपिलायै नमः, लं हव्यकव्यायै नमः, क्षं कव्यवहायै नमः । इसके अनन्तर आधार में मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' कहकर पूजन करे ।। ११–१५ ।।

नम इत्यवमाधारे पूजयेद्वह्निमण्डलम् ।
ततोऽर्घ्यपात्रमादाय फट्कारेण विशोधयेत् ॥ १६ ॥
पूर्ववद्यन्त्रमालिख्य षट्कोणेषु षडङ्गकम् ।
मूलेनैव त्रिकोणञ्च तद्वृत्ते रविमण्डले ॥ १७ ॥
क्रमादिवर्णबीजेन ठडान्तेन प्रपूजयेत् ।
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वलिनी रुचिः ॥ १८ ॥
सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ।
अं सूर्यमण्डलायेति द्वादशात्मकलात्मने ॥ १९ ॥

अब 'फट्' मन्त्र से अर्घ्य तथा पात्र का शोधन करके पूर्ववत् यन्त्र का अंकन करने के उपरान्त षट्कोण षडङ्ग में मूलमन्त्र द्वारा तथा त्रिकाण के वृत्त में 'कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं नं ज्वालिन्यै नमः, चं धं रुच्यै नमः, छं दं सुषुम्नायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, ञं णं बोधिन्यै नमः टं ठं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नमः' से सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करके सूर्य की पूजा 'अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' मन्त्र से करना चाहिए ॥१६–१९॥

नमोऽन्तेनार्घ्यपात्राम्भः पूजयेद्भानुमण्डलम् ।
विलोममातृकां तद्वन्मूलं मन्त्रं समुच्चरन् ॥ २० ॥
त्रिभागं पूजयेन्मन्त्री कलशस्थामृतेन च ।
तत्रापि पूर्ववद्यन्त्रं लिखित्वा पूजनञ्चरेत् ॥ २१ ॥
षडङ्गेन च मूलेन तद्वृत्ते सोममण्डलम् ।
षोडशपूर्वबीजेन नाममन्त्रेण देशिकः ॥ २२ ॥
स चतुर्थीनमोऽन्तेन कलां सोमस्य पूजयेत् ।
अमृता मानदा पूषा तुष्टिपुष्टी रतिर्धृतिः ॥ २३ ॥
शशिनी चन्द्रिका कान्तिः ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ।
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः शशिनः कलाः ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर मातृका वर्णों का विलोम क्रम से उच्चारण करके तथा मूलमन्त्र का जप करके घट में स्थित अमृत द्वारा अर्घ्यपात्र का तीन चौथाई हिस्सा भर देना चाहिए । पुनः पूर्ववत् यन्त्र अंकित करके षट्कोण के षडंग तथा त्रिकोण का पूजन करके चन्द्र की षोडश कलाओं का पूजन करे—

'अं अमृतायै नमः, आं मानदायै नमः इं पूषायै नमः, ईं तुष्टयै नमः, उं पुष्टयै नमः, ऊं रत्यै नमः, ऋं धृत्यै नमः, ॠं शशिन्यै नमः, ऌं चन्द्रिकायै नमः, ॡं कान्त्यै नमः, एं ज्योत्स्नायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीत्यै नमः, औं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः' ।

तदनन्तर चन्द्रमण्डल का पूजन 'ॐ चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' कहकर करना चाहिए ॥ २०–२४ ॥

दूर्वाक्षतं रक्तपुष्पं बर्बरामपराजिताम् ।
मायया निक्षिपेत् पात्रे तीर्थावाहनमाचरेत् ॥ २५ ॥
गन्धे चेत्यादि मन्त्रेण मुद्रयाङ्कुशसंज्ञया ।
रविमण्डलमध्याच्च कुलतीर्थानि चालयेत् ॥ २६ ॥
कवचेनावगुण्ठास्त्रमनुना रक्षणञ्चरेत् ।
वं धेन्वा चामृतीकृत्य छादयन्मत्स्यमुद्रया ॥ २७ ॥
मूलं संजप्य दशधाऽऽवाहयेद्देवतां ततः ।
पुष्पाञ्जलित्रयेणैव पूजयेदिष्टदेवताम् ॥ २८ ॥
अखण्डाद्यैः पञ्चमन्त्रैर्मन्त्रयेत्तदनन्तरम् ।
ॐ अखण्डैकरसाकारे परे रससुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामन्त्रं निधेह्यकुलनायिके ।
अकूलस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकलेवरे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ।
तद्रूपेणैकरस्यञ्च कृत्वा ह्येतत्स्वरूपिणीम् ।
भुक्त्वा परामृताकारं मयि विस्फुरणं कुरु ।
ब्रह्माण्डरससम्भूतमशेषरससम्भवम् ।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावहम् ।
अहन्तापात्रभरितमिदन्तापरमामृतम् ।
पराहन्तापयेद्वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम् ॥ २९ ॥
इत्यामन्त्र्य ततस्तस्मिन् शिवयोः सामरस्यकम् ।
पूर्ववत् पूजनं कृत्वा धूपदीपौ प्रदर्शयेत् ॥ ३० ॥
इति श्रीपात्रसंस्कारः सर्वत्र कुलपूजने ।
अकृत्वा पापभाङ्मन्त्री पूजा च विफला भवेत् ॥ ३१ ॥

इत्यन्नदाकल्पे श्रीपात्रशोधनं नाम दशमं पटलम् ।

अब दूर्वा, आतप तण्डुल, लालपुष्प, धतूरा तथा अपराजिता का फूल 'ह्रीं' मन्त्र का उच्चारण करते हुए चढ़ाना चाहिए। 'गन्धे च' इत्यादि मन्त्र से अंकुश मुद्रा द्वारा रविमण्डल स्थित कुलतीर्थ का आवाहन करके 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन, 'फट्' मन्त्र से रक्षण, 'वं' मन्त्र से धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण तथा मत्स्य मुद्रा द्वारा आच्छादन करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र द्वारा १० बार जप करके देवता का आवाहन करना चाहिए। तीन पुष्पांजलि प्रदान करके इष्ट देवता का पूजन किया जाता है। अब—

'ॐ अखण्डैकरसाकारे परे रससुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामन्त्रं निधेह्यकुलनायिके ।
अकुलस्था मृताकारे शुद्धज्ञानकलेवरे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ।
तद्रूपेणैकरस्यञ्च कृत्वा ह्येतत्स्वरूपिणीम् ।
भुक्त्वा परामृताकारं मयि विस्फुरणं कुरु ।
ब्रह्माण्डरससम्भूतमशेषरससम्भवम् ।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावहम् ।
अहन्तापात्रभरितंमिदन्तापरमामृतम् ।
पराहन्तापयेद्वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम् ।

इस मन्त्र से देवता का आमन्त्रण करके उसमें शिवशक्ति का सामरस्य करते हुए पूर्ववत् पूजन करके धूपदीपादि प्रदर्शित करना चाहिए। यह है कुल पूजन में श्रीपात्र का संस्कार। जो साधक इस पूजा को नहीं करता उसकी पूजा निष्फल है तथा वह पाप का भागी हो जाता है ॥ २५–३१ ॥

दशम पटल समाप्त ।

एकादशं पटलम्

श्रीशिव उवाच

घटश्रीपात्रयोर्मध्ये पात्राणि स्थापयेत्ततः ।
गुरुपात्रं भोगपात्रं शक्तिपात्रं ततः परम् ॥ १ ॥
योगिनीवीरपात्रे च बलिपात्रं ततः परम् ।
पाद्यमाचमनार्थन्तु श्रीपात्रेण नव क्रमात् ॥ २ ॥
सामान्यार्घ्यस्य विधिना पात्राणां स्थापनञ्चरेत् ।
कलशस्थामृतेनैव त्रिभागं परिपूर्य च ॥ ३ ॥
माषप्रमाणं पात्रेषु शुद्धिखण्डं नियोजयेत् ।
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्याममृतं पात्रसंस्थितम् ॥ ४ ॥
गृहीत्वा शुद्धिखण्डेन दक्षया तत्वमुद्रया ।
सर्वत्र तर्पणं कार्यं विधिरेष प्रकीर्त्तितः ॥ ५ ॥
श्रीपात्रात् परमं बिन्दुं गृहीत्वा शुद्धिसंयुतम् ।
आनन्दभैरवं देवं भैरवीञ्च प्रतर्पयेत् ॥ ६ ॥

श्रीशिव कहते हैं—इसके अनन्तर घट तथा श्रीपात्र के मध्य में गुरुपात्र, भोगपात्र, शक्तिपात्र और उसके पश्चात् योगिनीपात्र, वीरपात्र एवं पाद्य तथा आचमनीय पात्र को सामान्यार्घ्य स्थापन क्रम से स्थापित करना चाहिए। कलशस्थ अमृत के द्वारा पात्र के तीन चौथाई भाग को भरकर एक मासा शुद्धिखण्ड (मद्य) उसमें छोड़ना चाहिए ।

अब बायाँ अंगूठा तथा अनामिका को मिलाकर उससे पात्रसंस्थित कारणामृत (मद्य) को तत्वमुद्रा द्वारा लेकर तर्पण करना चाहिए । यह तर्पण विधिवत् करे। इसके अनन्तर श्रीपात्र से परमबिन्दु लेकर तत्वमुद्रा स्थिति में उससे आनन्दभैरव एवं आनन्दभैरवी का तर्पण करना चाहिए ॥ १–६ ॥

तत्तन्मत्रं समुच्चार्य सहस्रारे प्रतर्पयेत् ।
अमुकं तर्पयामीति मत्रान्ते नामसंस्थितिः ॥ ७ ॥
गुरुपात्रामृतेनैव तर्पयेत् गुरुसन्ततिम् ।
सहस्रारे निजगुरुं सपत्नीकं प्रतर्प्य च ॥ ८ ॥
वागभवाद्यं स्वस्वनाम्ना तद्वद्गुरुचतुष्टयम् ।
ततः स्वहृदयाम्भोजे भोगपात्रामृतेन तु ॥ ९ ॥

अन्नदां तर्पयामीति मायाबीजादिकेन च ।
स्वाहान्तेन त्रिधा मन्त्री तर्पयेदिष्टदेवताम् ॥ १० ॥
शक्तिपात्रामृतैस्तद्वदङ्गावरणतर्पणम् ।
योगिनीपात्रसंस्थेन सायुधां सपरीकराम् ॥ ११ ॥

जिसका तर्पण किया जाये उसके मन्त्र के साथ नाम तथा 'तर्पयामीति' लगाकर तर्पण करना चाहिए। गुरुपात्रस्थ अमृत से गुरु सन्तति का तर्पण करे। सहस्रार में अपने गुरु एवं गुरु पत्नी का तर्पण करे। वहीं गुरु चतुष्टय का भी तर्पण करना चाहिए। इसके पश्चात् अपने हृदय में भोगपात्रस्थ अमृत के द्वारा 'ह्रीं श्रीमत् अन्नदां तर्पयामि स्वाहा' कहकर तीन बार तर्पण करे। शक्ति पात्रामृत द्वारा आवरण देवता का, योगिनी पात्रामृत से आयुध सहित सपरिवार मूल देवता का तर्पण करना चाहिए ॥ ७–११ ॥

ततः स्ववामभागे च सामान्यं मण्डलं लिखेत् ।
सम्पूज्य मण्डलं तत्र स्थापयेद्बलिपञ्चकम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर अपने वामभाग में सामान्य मण्डल का अंकन करके उसकी पूजा करने के अनन्तर वहाँ बलिपंचक की स्थापना करनी चाहिए ॥ १२ ॥

तारत्रयञ्च वं बीजं बटुकाय नमः पदम् ।
सम्पूज्य पूर्वभागे च बटुकाय बलिं हरेत् ॥ १३ ॥

अब 'ॐ ॐ ॐ वं बटुकाय नमः' द्वारा पूजन करके पूर्वदिशाभाग में बटुक को बलि प्रदान कार्य करना चाहिए ॥ १३ ॥

त्रितारं यां योगिनीभ्यः स्वाहान्तो दक्षिणे हरेत् ।
षड्दीर्घयुक्तं सक्षन्तं क्षेत्रपालाय हृन्मनुः ॥ १४ ॥
पश्चिमे तद्बलिं दत्त्वा ह्युत्तरस्यां समाहरेत् ।
गां गीं गूं गणपतये स्वाहान्तेन प्रकल्पयेत् ॥ १५ ॥

इसी प्रकार 'ॐ ॐ ॐ यां योगिनीभ्यः स्वाहा' कहकर दक्षिण दिशा में योगिनी को, 'सां सीं सूं सैं सौं सः क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः' मन्त्र से क्षेत्रपाल को पश्चिम दिशा में बलि देना चाहिए। इसके अनन्तर 'गां गीं गूं गणपतये स्वाहा' द्वारा उत्तर दिशा में गणेश को बलि प्रदान करना चाहिए ॥ १४–१५ ॥

मध्ये तथा सर्वभूतबलिं दद्याद् यथाविधि ।
ह्रीं श्रीं सर्वपदञ्चोक्त्वा विघ्नेभ्यश्च ततः परम् ॥ १६ ॥
सर्वभूतेभ्य इत्युक्त्वा स्वाहा हुं च मनुर्मतः ।
ततः शिवायै विधिवद्बलिमेकं प्रदापयेत् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् 'ह्लीं श्रीं सर्वविघ्नेभ्यः सर्वभूतेभ्यः स्वाहा हुं' मन्त्र द्वारा समस्त भूत समूह को एक बलि दिया जाता है ॥ १६–१७ ॥

गृह्ण देवि महाभागे शिवकालाग्निरूपिणि ।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ॥ १८ ॥
मूलमेष बलिः पश्चात् शिवायै नम इत्यपि ।
चक्रानुष्ठानमेतद्धि कथितं गुरुभाषितम् ॥ १९ ॥

इसके पश्चात् १८वाँ श्लोक पढ़ने के पश्चात् 'ह्रीं शिवायै नमः' कहकर शिवा के लिए बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार से यह गुरु कथित चक्रानुष्ठान प्रणाली है ॥ १८–१९ ॥

ततः पुष्पाञ्जलिं रक्तचन्दनागुरुमिश्रितम् ।
नीत्वा हृदम्बुजे ध्यायेन्मुद्रया कूर्मसंज्ञया ॥ २० ॥
ध्यात्वा हृदब्जे देवीञ्च सुषुम्णा ब्रह्मवर्त्मना ।
सहस्रारे परशिवे नीत्वा तां धारयेत् पराम् ॥ २१ ॥
पाययित्वा परानन्दं श्वासमार्गेण साधकः ।
पुष्पाञ्जलौ निवेश्याथ यन्त्रमध्ये निधापयेत् ॥ २२ ॥

अब रक्तचन्दन तथा अगरु मिश्रित पुष्पांजलि को कूर्ममुद्रा में लेकर हृदय कमल में देवी का ध्यान करते हुए देवी को सुषुम्नामार्ग द्वारा सहस्रार में ले जाकर साधक श्वासमार्ग द्वारा उन्हें पुष्पांजलि में लाकर यन्त्र में स्थापित करे ॥ २०–२२ ॥

ध्यानं यथा प्रवक्ष्यामि सर्वाम्नायनमस्कृतम् ।
ध्यानेन शिवसायुज्यं प्राप्नुयात् साधकोत्तमः ॥ २३ ॥
रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूडा-
मन्नप्रदाननिरतां स्तनभारनम्राम् ।
नृत्यन्तमिन्दुशकलाभरणं विलोक्य,
हृष्टां भजे भगवतीं भवदुःखहन्त्रीम् ॥ २४ ॥

समस्त आम्नायों में वर्णित देवी का ध्यान कहा जाता है। इसके ध्यान से साधकगण शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। ध्यान इस प्रकार से है—देवी का शरीर रक्तवर्ण है। वे विचित्र परिधानों को धारण की हुई हैं। उनके मस्तक पर अर्द्धचन्द्र विराजित है देवी सदा अन्नदान करती रहती हैं और इनकी देह स्तन भार से झुकी हुई है। ये सदा अर्द्धचन्द्रधारी नर्त्तनशील शिव का अवलोकन करती हुई प्रसन्न होती रहती हैं। मैं ऐसी भवदुःख का विनाश करने वाली भगवती का भजन करता हूँ ॥ २३–२४ ॥

एवं ध्यात्वा यजेद्देवीं वक्ष्यमाणेन वर्त्मना।
धर्मार्थकाममोक्षाणामधिकारी भवेन्नरः ॥ २५ ॥

इत्यन्नदाकल्पे चक्रानुष्ठानं नाम एकादशं पटलम्।

इस प्रकार से देवी का ध्यान करके उपरोक्त क्रम से जो साधक उनका पूजन करता है, वह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का अधिकारी हो जाता है ॥ २५ ॥

एकादश पटल समाप्त।

द्वादशं पटलम्

श्रीशिव उवाच

ततो यन्त्रे समादाय कृताञ्जलिपुटो नरः ।
आवाहयेदन्नपूर्णां सायुधां सपरिकराम् ।। १ ।।
देवेशि ! भक्तिसुलभे ! पारिवारसमन्विते ! ।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव ।
ह्रीं अन्नपूर्णे माहेश्वरि परिवारादिभिः सह ।
इहागच्छ द्विधा चोक्त्वा इह तिष्ठ द्विधा पुनः ।। २ ।।
इह शब्दात् सन्निधेहि इह सन्निपदान्ततः ।
रुध्यस्व पदमाभाष्य मम पूजां गृहाण च ।। ३ ।।
अत्राधिष्ठानमाभाष्य कुरु युग्ममतः परम् ।
इत्थमावाहनं प्रोक्तं प्रतिष्ठा प्रोच्यतेऽधुना ।। ४ ।।

शिव कहते हैं—अब अंजलिबद्ध होकर इस श्लोक का पाठ करे 'देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते । यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव ।।' तदनन्तर 'ह्रीं' अन्नपूर्णे माहेश्वरि परिवारादिभिः सह इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व मम पूजां गृहाण अत्राधिष्ठानं कुरु कुरु' इस मन्त्र से आवाहन करना चाहिए । यही आवाहन विधि है । अब प्राणप्रतिष्ठाविधि कहते हैं ।। १–४ ।।

पाशाङ्कुशपुटा शक्तिः स्वाहान्ता पुरतो भवेत् ।
अमुष्या अन्नपूर्णायाः प्राणा इह ततः परम् ।। ५ ।।
प्राणा इति पुनः पञ्च बीजानि तदनन्तरम् ।
अमुष्या जीव इह च स्थित इत्युच्चरेत् पुनः ।। ६ ।।
पञ्चबीजानि चामुष्याः सर्वेन्द्रियाणि च कीर्तयेत् ।
पुनस्तत् पञ्चबीजानि ततोऽमुष्याः पदस्ततः ।। ७ ।।
वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्पाणिपादतः ।
बुद्धिः प्राणा इहागत्य चिरं तिष्ठन्तु ठद्वयम् ।। ८ ।।
इति द्विधा यन्त्रमध्ये लेलिहानाख्यमुद्रया ।
संस्थाप्य विधिवत् प्राणान् कृताञ्जलिपुटो वदेत् ।। ९ ।।

अब—'आं ह्रीं क्रों हं सः अमुष्या अन्नपूर्णाया प्राणा इह प्राणाः', 'आं ह्रीं क्रों हं वः अमुष्या अन्नपूर्णाया जीव इह स्थितः', तदनन्तर 'आं ह्रीं क्रों हं

सः अमुष्या अन्नपूर्णायाः सर्वेन्द्रियाणि' तदनन्तर 'आं ह्रीं क्रों हं सः अमुष्या अन्नपूर्णायाः वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्पाणिपादबुद्धिप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' कहकर लेलिहाना मुद्रा से प्राणप्रतिष्ठा करके अंजलि बद्ध होकर यह श्लोक पढ़े—ह्रीं अन्नपूर्णे माहेश्वरि परिवारादिभिः सह इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व मम पूजां गृहाण अत्राधिष्ठानं कुरु कुरु' ॥ ५–९ ॥

अन्नपूर्णे स्वागतन्ते सुस्वागतमिदन्तव ।
आसनञ्चेदमत्र त्वमास्यतां परमेश्वरि ।

तदनन्तर उपर्युक्त श्लोक को पढ़ कर अन्नदा का स्वागत चरना चाहिये । 'इदम् आसनम् आस्यतां परमेश्वरि' कहकर आसन प्रदान करना चाहिये ।

ततोविशेषार्घ्यजले त्रिधा मूलं समुच्चरन् ।
प्रोक्षयेद्देवशुद्ध्यर्थं षडङ्गैः सकलीकृतैः ॥
ततः सम्पूजयेद्देवीं षोडशैरुपचारकैः ।
पाद्यार्घ्यमाचमनीयञ्च स्नानं वसनभूषणैः ॥
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनानि च ।
ताम्बूलममृतं पात्रं तर्पणञ्च नतिक्रिया ॥
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश ।
मायाबीजमिदं पाद्यमन्नदायै नमः पदम् ॥ १० ॥
पाद्यं चरणयोर्दद्यात् शिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ।
स्वाहामन्त्रेण मतिमान् स्वधेत्याचमनीयकम् ॥ ११ ॥
मुखे नियोजयेन्मन्त्री मधुपर्कं मुखाम्बुजे ।
वं स्वधेति च मन्त्रेण पुनराचमनं मुखे ॥ १२ ॥
स्नानीयं सर्वगात्रेषु वसनं भूषणानि च ।
निवेदयामि मनुना दद्यादेतानि देशिकः ॥ १३ ॥
मध्यानामिकाभ्याञ्च गन्धं दद्याद् हृदम्बुजे ।
नमोऽन्तेन च मन्त्रेण वौषडन्तेन पुष्पकम् ॥ १४ ॥
धूपदीपौ च पुरतः संस्थाप्य प्रोक्षणादिभिः ।
निवेदयामि मनुना चोत्सृज्य तदनन्तरम् ॥ १५ ॥
जपध्वनिं ततो मन्त्रमातः स्वाहेति मन्त्रतः ।
सम्पूज्य घण्टां वामेन वादयन् दक्षिणेन तु ॥ १६ ॥
निधाय गन्धं मुद्राधो नीचैर्धूपं निवेदयेत् ।
दीपन्तु दृष्टिपर्यन्तं दशधा विनिवेदयेत् ॥

ततः पात्रं समादाय शुद्धामृतयुतं करे।
मूलं समुच्चरन् मन्त्री यन्त्रमध्ये निवेदयेत् ॥ १७ ॥

अब विशेषार्घ्यं जल से मूलमन्त्र द्वारा शुद्धि हेतु, तीन बार प्रोक्षण करे। इसके अनन्तर देवी का पूजन षोडशोपचार द्वारा करना चाहिए। पाद्य, अर्घ्यं, आचमनीय जल, स्नान, वसन, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनः आचमन, ताम्बूल, अमृतपात्र से तर्पण प्रभृति षोडश उपाचार से पूजन करे। तत्पश्चात् 'ह्रीं पाद्यं अन्नदायै नमः' कहकर देवी के चरणों में पाद्य को प्रदान करना चाहिए। स्वाहा कहकर शिर पर अर्घ्यं निवेदन कर देना चाहिए। 'स्वधा' से आचमनीय मुखपद्म में मधुपर्क अर्पित करे। 'वं स्वधेति' मन्त्र द्वारा ननः आचमनीय प्रदान करे। 'सर्वंगात्रेषु निवेदयामि' कहकर स्नानीय जल तथा वसनभूषणादि प्रदान करे। मध्यमा तथा अनामिका द्वारा 'नमः' कहकर हृदय में गन्ध प्रदान करे। पहले प्रोक्षण करके 'निवेदयामि' कहते हुए गन्ध मुद्रा द्वारा धूप को नीचे की ओर अर्पित करे और चारों ओर दीप प्रदर्शित करे। तत्पश्चात् बायें हाथ में घंटा लेकर 'जय ध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा' कहते हुए घण्टा की अर्चना करके उसे दाहिने हाथ से बजाये। (बायें हाथ से घंटा छूकर दाहिने हाथ से उसके नीचे बजने वाले दोलक को हिलाये)। इसके पश्चात् शुद्ध अमृत युक्त पात्र को दाहिने हाथ में लेकर प्रत्येक बार मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे यन्त्र मध्य में तीन बार अर्पित करे ॥ १०–१७ ॥

उस समय यह श्लोक भी पढ़े—

परमं वारुणीकल्पं कोटिकल्पान्तकारिणि।
गृहाण शुद्धिसहितं भुक्ति मुक्तिञ्च देहि मे ॥ १८ ॥

यह श्लोक प्रत्येक बार अर्पण के समय बार-बार पढ़े तदनन्तर मूलमन्त्र का उच्चारण करे तब अर्पण करे। ऐसा तीन बार करना चाहिए ॥ १८ ॥

इत्यनेन च मन्त्रेण मूलमन्त्रेण देवताम्।
त्रिवारमर्पयेत् पात्रं सद्वितीयं समन्त्रकम् ॥ १९ ॥

इस मन्त्र (१ से लेकर १८ तक) तथा अन्नदा देवी के मूलमन्त्र के साथ पात्रस्थ अमृत का अर्पण तीन बार करे ॥ १९ ॥

ततः सामान्यविधिना पुरतो मण्डलं लिखेत्।
तस्योपरि न्यसेत् पात्रं नैवेद्यपरिपूरितम्।
प्रोक्षणञ्चावगुण्ठञ्च रक्षणञ्चामृतीकृतम्।
मूलेन सप्तधामन्त्र्य अर्घ्याद्भिर्विनिवेदयेत् ॥ २० ॥
मूलमेतत्तु नैवेद्यं सर्वोपकरणान्वितम्।
निवेदयाम्यन्नदायै जुषाणेदं हरिः शिवे ॥ २१ ॥

ततः ग्रासादिमुद्राभिः पञ्चभिः प्राशयेद्धविः ।
वामेन ग्रासमुद्राञ्च विकचोत्पलसन्निभाम् ॥ २२ ॥
दर्शयेन्मूलमन्त्रेण पानार्थं तीर्थपूरितम् ।
कलशं विनिवेद्याथ पुनराचमनीयकम् ॥ २३ ॥
दत्त्वा ततस्तु ताम्बूलं प्रोक्षणादिविशोधितम् ।
निवेदयाम्यन्नदायै मूलमन्त्रेण दापयेत् ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् सामान्य विधि से सामने मण्डल बनाकर उसके ऊपर नैवेद्य से भरा पात्र स्थापन करे और प्रोक्षण, अवगुण्ठन, रक्षण, अमृतीकरण मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करते हुए अर्घ्यादि द्वारा अभ्युक्षण करना चाहिए। उस समय इस—

'मूलमेतत्तु नैवेद्यं सर्वोपकरणान्वितम् ।
निवेदयाम्यन्नदायै जुषाणेदं हविः शिवे' ॥

श्लोक का पाठ करता रहे। इसके अनन्तर ग्रासादि पंचमुद्रा द्वारा ग्रासन कराये। विकच उत्पल के समान ग्रासमुद्रा का प्रदर्शन करके मूलमन्त्र द्वारा तीर्थ से भरे कलश, पानीय तथा आचमनीय को निवेदित करे। अन्त में शोधित ताम्बूल निवेदनार्थं 'ह्रीं अन्नदायै निवेदयामि' कहकर ताम्बूल अर्पित करना चाहिए ॥ २०–२४ ॥

ततः श्रीपात्रसंस्थेनामृतेन त्रिःप्रतर्पयेत् ।
उत्तमाङ्गे हृदाधारपदे सर्वाङ्गके क्रमात् ॥ २५ ॥
पत्रपुष्पाञ्जलिं दद्यात् मूलमन्त्रेण देशिकः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ॥ २६ ॥
तवावरणदेवाश्च पूजायामि नमः पदम् ।
अग्निनिर्ऋतिवाव्यीशपुरतो दिक्षु च क्रमात् ॥ २७ ॥
षडङ्गानि च सम्पूज्य गुरुपंक्तीः समर्चयेत् ।
गुरुञ्च परमादिञ्च परापरगुरुन्ततः ॥ २८ ॥
परमेष्ठिगुरुं तद्वद् यजेत् कुलगुरुन्तथा ।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमी तथा ॥ २९ ॥
अष्टमी च महालक्ष्मीः प्रागादिषु दलेष्विमाः ।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधश्चोन्मत्तसंज्ञकः ॥ ३० ॥
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टभैरवाः ।
इन्द्रादीन् दशदिक्पालान् भूपुरान्तः प्रपूजयेत् ॥ ३१ ॥
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये पूजयेत्तर्पयेत्ततः ।
बटुकं क्षेत्रपालञ्च योगिनीं गणनायकम् ॥ ३२ ॥

पूर्वादिचतुर्द्वारेषु पूजयेत्तर्पयेत् पुनः ।
पञ्चोपचारान् दत्त्वा तु पात्रं शुद्धियुतं पुनः ।। ३३ ।।
ततः सम्पूजयेन्मन्त्री सायुधां सपरीकराम् ।
सर्वोपचारैः सम्पूज्य तर्पयित्वा पुनः पुनः ।। ३४ ।।

अब श्रीपात्रस्थ अमृत से अन्नदा का तीन बार तर्पण करना चाहिए । यह क्रमशः होना चाहिए अर्थात् उत्तमांग (शिर), हृदय, आधार, पद तथा सर्वाङ्ग क्रम से । तत्पश्चात् मूलमन्त्र से ५ बार पुष्पांजलि देकर कृतांजलि स्थिति में इष्ट देवता की प्रार्थना 'तवावरणदेवांश्च पूजयामि नमः' कहकर करना चाहिए । तदनन्तर अग्नि, नैर्ऋत, वायु, ईशानकोण तथा पूर्व, दक्षिण दिशा में क्रमशः षडङ्ग पूजन करे । तदनन्तर गुरु पंक्ति की अर्चना करे । गुरु, परमगुरु, आदिगुरु, परात्परगुरु, परमेष्ठिगुरु तथा कुलगुरु ही गुरु पंक्ति में हैं । अब वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, सप्तमी, अष्टमी तथा महाष्टमी का पूजन एक-एक दिशा में करे, (पूर्व से प्रारम्भ करके आठों दिशाओं में एक-एक देवी का पूजन करे) । तदनन्तर असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण एवं संहार भैरव की एवं इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा भूपुरान्त में करके उसके बाहर इनके अस्त्रों का पूजन करके देवता का तर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण रूपी द्वार (भूपुर के द्वार) पर क्रमशः बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी तथा गणनायक का पूजन करे । पुनः पंचोपचार पूजन करके मद्य प्रदान करे । अन्त में आयुधों तथा परिवार जनों से युक्त देवी का पूजन करके उनका पुनः-पुनः तर्पण करना चाहिए ।। २५–३४ ।।

बलिदानं ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये ।
नरश्छागश्च महिषो मेषः शूकर एव च ।। ३५ ।।
शशकः शल्लकी गोधा खड्गी कूर्मो दश स्मृताः ।
सुलक्षणं पशुं देव्या अग्रे संस्थाप्य मन्त्रवित् ।। ३६ ।।
अर्घ्योदकेन संप्रोक्ष्य धेनुमुद्रामृतीकृतम् ।
कृत्वा छागादिपशवे नम इत्यमुना सुधीः ।। ३७ ।।
पूजयेद् गन्धसिन्दूरपुष्पाद्यैस्तदनन्तरम् ।
गायत्रीं दक्षिणे कर्णे जपेत् पाशविमोचिनीम् ।। ३८ ।।
पशुपाशाय शब्दान्ते विद्महे तदनन्तरम् ।
विश्वकर्मपदं ङेऽन्तं धीमहीति पदं वदेत् ।
ततः समुच्चरेन्मन्त्री तन्नो जीवः प्रचोदयात् ।
एषा स्यात् पशुगायत्री पशुपाशविनाशिनी ।। ३९ ।।
ततः खड्गं यजेन्मन्त्री कूर्चबीजपुरःसरम् ।
अग्रे वागीशब्रह्माणौ लक्ष्मीनारायणौ ततः ।। ४० ।।

उमामहेश्वरौ मूले सचतुर्थीनमोन्तकौ ।
पूजयित्वा ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुताय च ।
खड्गाय नमः इत्यन्तं मनुना खड्गपूजनम् ।
महावाक्यं ततः कृत्वा चोत्सृज्य बलिमुत्तमम् ।
यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् ।
इत्थं निवेद्य च पशुं धृत्वा चोर्ध्वमुखस्ततः ।। ४१ ।।
मूलं समुच्चरन् खड्गं घर्षयेच्छेदयेत् पशुम् ।
यथावदुष्णरुधिरं पशुकण्ठविनिर्गतम् ।। ४२ ।।
धारारूपं मन्त्रमध्ये पतेद्देवीमुखे मुहुः ।
मांसखण्डं ततो दत्वा भूमिष्ठं रुधिरन्ततः ।। ४३ ।।
चतुर्भागं विधायाथ बटुकादिबलिं हरेत् ।
एवं बलिविधिः प्रोक्तः कुलीनानां कुलालये ।
अन्यथा देवताप्रीतिर्जायते न कदाचन ।। ४४ ।।

इत्यन्नदाकल्पे बलिदानाख्यं नाम द्वादशं पटलम् ।

अब बलिदान देना चाहिए । जैसे–नर[१], छाग, महिष, मेष, शूकर, शशक, पल्लकी, गोधा, गैण्डा तथा कूर्म—ये दस बलि के लिए विहित प्राणी हैं । सुलक्षण पशु को देवता के सम्मुख मन्त्रवित् साधक को लाना चाहिए । अर्घ्यजल द्वारा प्रोक्षण तथा धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण करके जो पशु हो पहले उसका नाम अमुक के स्थान पर लगाकर यह पढ़े—'अमुकपशवे नमः' । तब गन्ध, सिन्दूर तथा पुष्पादि से उसका पूजन करना चाहिए । पशु के दाहिने कान में 'पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीव प्रचोदयात्' इस पशुगायत्री का उच्चारण करे । यह पशुपाशविनाशिनी गायत्री है । इसके अनन्तर खड्ग का पूजन करे । उसके अग्रभाग का पूजन 'हुं वागीश्वरीब्रह्मभ्यां नमः' द्वारा, मध्यभाग का पूजन 'हुं लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः' द्वारा और उसके मूल (जहाँ से पकड़ा जाता है) का पूजन 'उमामहेश्वराभ्यां नमः' द्वारा करे । इसके अनन्तर संकल्प करके—

'ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुक्ताय खड्गाय नमः' कहकर खड्ग पूजन करना चाहिए । बलि उत्सर्ग हेतु यह कहे—

'यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम्' ।

---

१. नरबलि केवल राजा ही दे सकता है—'राजा नरबलिं दद्यान्नान्येऽपि परमेश्वरि' । (शक्तियामल) अतः अन्य के लिए नरबलि निषिद्ध है ।

अब हाथ से पशु को किंचित् स्पर्श करे मानो उसे उठा रहा हो और मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए पशु के गले पर खडड का स्पर्श कराते हुए उसका छेदन करना चाहिए। छेदित स्थान से धारा के रूप में गिर रहे रक्त का अर्पण यन्त्र मण्डल के मध्य में प्रदान करे और मांस लेकर देवी को अर्पित करे। जमीन में गिरे रक्त को ९ भाग में बाँटकर भूपुर के चतुर्द्वार पर स्थित बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी तथा गणनायक को क्रमशः उनके द्वार पर अर्पित करना चाहिए। यह बलिविधि केवल कुल (कुलीन) साधक के लिए ही है। अन्यथा देवता प्रसन्न नहीं होते। अन्य लोगों के हेतु यह बलिविधि नहीं है॥ ३५–४४॥

बारहवाँ पटल समाप्त।

त्रयोदशं पटलम्

श्रीशिव उवाच

अथ जपरहस्यञ्च शृणुष्व ब्रह्मभैरव !।
जप्तेन येन विधिना शीघ्रं देवी प्रसीदति।
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया।
यो मन्त्रो गुरुरेवासौ यो गुरुः स च देवता ॥ १ ॥
अभेदेन जपेद् यस्तु तस्य सिद्धिरनुत्तमा।
इत्थं विभाव्य मतिमान् जपकर्म समाचरेत्।
गुरुं शिरसि संचिन्त्य हृदये देवतां स्मरन्।
मूलमन्त्रमयीं ध्यायेज्जिह्वायां दीपरूपिणीम् ॥ २ ॥

शिव कहते हैं—हे ब्रह्मभैरव ! अब तुमसे जपरहस्य कहता हूँ। जिस विधि से जप करने से देवी शीघ्र ही प्रसन्न होती हैं, उसे सुनो ! देवता, गुरु तथा मन्त्र में सदा ऐक्यभावना करनी चाहिए। अर्थात् जो मन्त्र है वही गुरु है और जो गुरु है वही देवता है। ऐसी अभेद कल्पना जो व्यक्ति करता है, उसे अत्यन्त उत्तम सिद्धि मिल जाती है। शिर में (सहस्रार में) गुरु का चिन्तन करके हृदय में देवता का स्मरण करना चाहिये और दीपशिखा स्वरूप मूलमन्त्र जिह्वा के अग्र भाग में देवीरूपेण स्थित है, यह चिन्तन होना चाहिये ॥ १–२ ॥

त्रयाणां तेजसात्मानं तेजोरूपं विभाव्य च।
तारेण सम्पुटीकृत्य सप्तधा मूलमन्त्रकम्।
सम्पूज्य मतिमान् पश्चात् मातृकापुटितं स्मरेत्।
मायाबीजन्तु दशधा जपेत् शिरसि चात्मनः ॥ ३ ॥

यह भावना करे कि मेरा बाह्य तथा आभ्यन्तर गुरु-देवता तथा मन्त्र से तेजोमय हो उठा है। अब मूलमन्त्र से पहले ॐ लगाये और उसके अन्त में भी ॐ लगाकर मूलमन्त्र को सम्पुटित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् 'ह्रीं' बीज को दोनों ओर मातृकाओं से पुटित करके (५० मातृका पहले लगाकर 'ह्रीं' को रक्खे और अन्त में पुनः ५० मातृका लगाये) उसका जप शिर में १० बार करे ॥ ३ ॥

प्राणायामं विधायाथ मालामादाय चात्मनः।
प्रवालविद्रुमभवामथ वैदूर्यसम्भवाम्।

अभावे स्फाटिकीं मालामथ रुद्राक्षसम्भवाम् ।
आसामेकतमां मालां शोधितां साधकोत्तमः ॥ ४ ॥
गृहीत्वा पूजयेत्तान्तु मन्त्रमेनं समुच्चरन् ।
ॐ माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।
इति सम्पूज्य तां मालां श्रीपात्रस्थामृतेन च ॥ ५ ॥
त्रिधा मूलेन सन्तर्प्य स्थिरचित्तो जपञ्चरेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वाथ वाष्टोत्तरकं शतम् ।
प्राणायामं पुनः कृत्वा श्रीपात्रजलपुष्पकैः ।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।
इति मन्त्रेण तद्देव्या वामहस्ते समर्पयेत् ।
तेजोरूपं जपफलं ततोऽष्टाङ्गं नमेद् भुवि ।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तोत्रञ्च कवचं पठेत् ॥ ६ ॥

इसके अनन्तर प्राणायाम करके [1]प्रवाल, विद्रुम, वैदूर्य की अथवा स्फटिक किं वा रुद्राक्ष के १०० दानों की माला लेकर 'ॐ माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव' इस मन्त्र द्वारा माला का पूजन करके उसका तर्पण श्रीपात्रस्थ अमृत से तीन बार करे । स्थिर होकर १००८ अथवा १०८ जप करना चाहिये । पुनः प्राणायाम करके हथेली में श्रीपात्रस्थ जलपुष्प लेकर देवी के बायें हाथ में जप समर्पण कर रहा हूँ, यह भावना करे । उस समय यह श्लोक पढ़ना चाहिये—

'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि' ॥

तेजःस्वरूप जपफल का समर्पण करके देवी को साष्टांग प्रणाम करना चाहिए ॥ ४–६ ॥

त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य विशेषार्घ्येण साधकः ।
विलोमार्घ्यप्रदानेन स्वात्मानञ्च समर्पयेत् ।
इतः पूर्वं प्राणबुद्धि देहधर्माधिकारतः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यन्ते ह्यवस्थासु प्रकीर्त्तयेत् ॥ ७ ॥
मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण तथा ।
शिश्ना यत्कृतमित्युक्त्वा यदुक्तं यत् स्मृतं तथा ।

---

१. यहाँ प्रवाल तथा विद्रुम एकार्थवाची दो शब्द दिये हैं, अतः 'प्रवाल' शब्द से 'लालचन्दन' का ग्रहण करना चाहिए, जो देवी पूजन में ग्राह्य है । —सम्पादक ।

समुच्चार्य वदेत् पश्चात् तत् सर्वं ब्रह्मशब्दतः ।
अर्पणं भवतु प्रोच्य मां मदीयं ततो वदेत् ॥ ८ ॥
सकलश्चान्नदादेव्याः पादपद्मेऽर्पणं ततः ।
अस्तु ॐ तत् सत् मन्त्रेण आत्मार्पणमिदं भवेत् ॥ ९ ॥
ह्रीमन्नदे पूजयामि क्षमस्वेति विसृज्य च ।
संहारमुद्रया पुष्पमाघ्राय स्थापयेद् हृदि ।
ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा त्रिकोणं सुपरिष्कृतम् ।
ततः सम्पूजयेद्देवीं निर्माल्यपुष्पवारिणा ॥ १० ॥
ह्रीं निर्माल्यपदश्चोक्त्वा वासिन्यै नम इत्यपि ।
ब्रह्मविष्णुशिवादिभ्यः सर्वदेवेभ्य एव हि ।
निर्माल्यं वितरेत् पश्चात् गृह्णीयात् शक्तिसाधकः ।
यन्त्रलेपं ब्रह्मरन्ध्रे नैवेद्यं भक्षयेत्ततः ॥ ११ ॥
सुपरिष्कृतनैवेद्यं कुमार्यै शक्तितो ददेत् ।
हृदि साऽहं सदा ध्यायन् वैष्णवाचारतत्परः ।
चौरवद्विहरेदेको निःशङ्कः सङ्गवर्जितः ॥ १२ ॥

इत्यन्नदाकल्पे पूजादिविवरणं नाम त्रयोदशं पटलम् ।

इसके अनन्तर तीन बार प्रदक्षिणा करके विशेष अर्घ्य देते हुए यह उच्चारण करना चाहिए—

'इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् कृतं यदुक्तं यत् स्मृतं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु मां मदीयं सकलं अन्नदादेव्याः पादपद्मे अर्पणं अस्तु ॐ तत् सत्' । इसी के साथ समर्पण करे । तत्पश्चात् 'ह्रीं अन्नपूर्णे पूजितासि क्षमस्व' कहकर देवी का विसर्जन करके संहार मुद्रा द्वारा पुष्प लेकर उसे सूँघे और हृदय पर रखे । तदनन्तर ईशानकोण में त्रिकोण मण्डल बनाकर उस पर निर्माल्य पुष्प तथा निर्माल्य जल से 'ह्रीं निर्माल्यवासिन्यै नमः' कहकर पूजन करना चाहिए । शाक्त साधक अब उस शक्ति निर्माल्य को ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि देवताओं को वितरित करके, स्वयं भी ग्रहण करे । तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्र में यन्त्र लेप करके अच्छी तरह से परिष्कृत नैवेद्य को कुमारियों को खिलाकर स्वयं भी भक्षण करे । हृदय में सदैव साऽहं की भावना करते हुए देवी के साथ अभेदत्व स्थिर करना चाहिए । सदा अशंक चित्त होकर एकाकी विचरण करे जैसे चोर एकाकी विचरण करता है ॥ ७–१२ ॥

तेरहवाँ पटल समाप्त ।

चतुर्दशं पटलम्

श्रीब्रह्मभैरव उवाच

पूजाविधानं परमं श्रुतं तव मुखाम्बुजात् ।
साधनानि वदेदानीं यदि तेऽस्ति दया मयि ॥ १ ॥

ब्रह्मभैरव कहते हैं—हे देव ! आपके मुख कमल से मैंने पूजा विधान का उपदेश प्राप्त किया । यदि आप मेरे ऊपर दयालु हैं, तब साधन विधि का उपदेश करिये ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

यद्यदुक्तं मया वत्स प्रातः कृत्यानि पूजनम् ।
तत् सर्वं शाम्भवीतन्त्रे स्वयं देव्या प्रकाशितम् ॥ २ ॥

श्रीशिव कहते हैं—हे वत्स ! मैंने जो कुछ प्रातः कृत्यादि का उपदेश तुम्हें दिया है, वह सब शाम्भवीतन्त्र में स्वयं देवी द्वारा भी कहा गया है ॥ २ ॥

साधनानि च पुण्यानि जपपूजाहुतादिभिः ।
कथयामि तव स्नेहाद् यथा देव्या मुखात् श्रुतम् ॥ ३ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय कृत्वावश्यं सुसंयतः ।
जिह्वायां भावयेत् विद्यां तेजोमालां समुज्ज्वलाम् ॥ ४ ॥
अमृतस्यन्दिनी वाणी तस्य सर्वविधा भवेत् ।
मण्डलात् कवितासिद्धिर्जायते नात्र संशयः ।
अब्दाच्चतुर्विधं तस्य पाण्डित्यमुपजायते ।
शतमष्टोत्तरञ्चैव जपेन्नियतमानसः ॥ ५ ॥

इस जपादि साधन को जैसा मैंने देवी से सुना, उसे तुम्हारे स्नेह के कारण उसी प्रकार बतला रहा हूँ—

ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर नित्यकर्म सम्पन्न करके सुसंयत होकर अपनी जिह्वा के अग्रभाग में मूलमन्त्रमयी देवी की भावना समुज्ज्वल तेजमाला के समान करना चाहिए । ऐसी भावना करने वाला साधक सब प्रकार की अमृतस्राविणी वाणी तथा कविता सिद्धि प्राप्त कर लेता है । यह निःसंदिग्ध है । जो व्यक्ति नित्य संयमित रहकर १०८ बार जप करता है, उसे १ वर्ष में ही चारों प्रकार का पाण्डित्य प्राप्त हो जाता है ॥ ३–५ ॥

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि साधनं भुवि दुर्लभम् ।
प्रातः प्रातः पिबेत्तोयं शतमष्टोत्तरं जपन् ॥ ६ ॥

न विस्मरेति मेधावी श्रुतान् वेदागमानपि।
षष्मासस्य प्रयोगेन नरः श्रुतिधरो भवेत् ॥ ७ ॥

अब अन्य प्रकार का मनुष्य दुर्लभ साधन कहता हूँ। जो प्रतिदिन प्रातः जल को सामने रखकर उस पर १०८ बार जप करके उस पानी को पी जाता है, वह मेधावी तथा श्रुतिधर हो जाता है। उसे सुना गया वेदान्तादि कभी नहीं भूलता। ६ माह तक ऐसा करने से सिद्धि प्राप्त होती है॥ ६–७॥

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय कृत्वा नित्यक्रियां बुधः।
नद्यां पुण्योदके तीर्थे स्नात्वा नियतमानसः।
किञ्चिदभ्युदिते सूर्यमण्डले स्वेष्टदेवताम्।
विभाव्य मानसैस्तत्र पूजयित्वा यथाविधि।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा समर्प्य हृदये नयेत्।
एवं प्रतिदिनं कुर्यान्माघे मासि सुसाधकः॥ ८॥

विद्वान् व्यक्ति ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर नित्यक्रिया सम्पन्न करके नदी के पुण्यजल में स्नान करके सूर्यमण्डल के किंचित् उदित होने पर उसमें अपने इष्ट देवता की कल्पना करके यथाविधि पूजन करे। १०८ बार मूलमन्त्र का जप करके देवी को हृदय में ले आये। और उन्हें जप समर्पित करे। साधक को माघमास में नित्य यह साधना करनी चाहिए॥ ८॥

सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा देव्याः प्रियतरो भवेत्।
मार्गशीर्षेऽथ पूर्णायां सायं सन्ध्यासु साधकः॥ ९॥
हृदये देवतां ध्यात्वा पूजयेन्मानसेन च।
ततस्तु पुरतो वह्निं संस्थाप्य स्थण्डिलोपरि॥ १०॥
मधुरत्रयसंयुक्तां जुहुयात् शालिमञ्जरीम्।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा धान्यश्रियमवाप्य च।
दाता भोक्ता यशस्वी च जायते नात्र संशयः।
शालितण्डुलहोमेन भवेदन्नसमृद्धिमान्।
दूर्वातिलाज्यहोमेन दीर्घमायुरवाप्नुयात्।
शुक्लपुष्पस्य होमेन शान्तिर्भवति शाश्वती॥ ११॥
रक्तप्रसूनहोमेन वशयेदखिलं जगत्।
पीतपुष्पस्य होमेन स्तम्भयेद्वायुमप्यथ।
पूजयित्वार्घपात्रन्तु मूलेनैव प्रपूरयेत्।
कृष्णपुष्पस्य होमेन शत्रूणां नाशनं मतम्॥ १२॥

उक्त साधन करने से व्यक्ति समस्त सिद्धियों का अधीश्वर तथा देवी का

प्रिय हो जाता है। अगहन की पूर्णिमा को सायं अपने हृदय में देवता का ध्यान करके मानसोपचार से उनका पूजन करे। तदनन्तर सामने स्थण्डिल का अंकन करके उसके ऊपर अग्नि स्थापित करके धान की मंजरी (बाली) को चीनी, मधु तथा गुड़ में मिलाकर १०८ बार होम करे। इससे वह धान्य तथा लक्ष्मी से युक्त होकर दाता-भोक्ता तथा यशस्वी के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है, यह निःसंदिग्ध है। शालितण्डुल द्वारा हवन से अन्नवृद्धि, मधु, तिल मिश्रित दूर्वा के हवन से दीर्घ आयु, श्वेतपुष्प से हवन करने पर शान्ति प्राप्ति, रक्तपुष्प से हवन द्वारा जगत् वशीकरण, पीतपुष्प से हवन करने पर स्तम्भन तथा कृष्णवर्ण के पुष्प से होम द्वारा शत्रुनाश सिद्ध हो जाता है॥ ९–१२॥

एषु होमेषु सङ्ख्योक्ता गजान्तकसहस्रिका।
पायसेन घृताक्तेन सहस्रं यदि होमयेत्॥ १३॥
सर्वान् मनोरथान् मन्त्री सम्प्राप्य मुक्तिमाप्नुयात्।
पलान्नञ्च सुधायुक्तं सहस्रं यदि होमयेत्॥ १४॥
अपि देवा वशं यान्ति किं पुनर्मानुषादयः।
जुहुयादमृताखण्डैः सद्यो रोगात् प्रमुच्यते॥ १५॥

इन सभी पुष्पों से ८००० आहुति दी जानी चाहिए। घृतमिश्रित पायस से १००० हवन करने पर साधक का समस्त मनोरथ पूर्ण होता है और उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। सुधा (मद्य) युक्त पलान्न से १००० आहुति देने से मनुष्यों की तो बात ही क्या, देवगण भी वशीभूत हो जाते हैं। गुरुच के टुकड़ों से १००० आहुति देने पर सद्यः रोग निवृत्ति भी हो जाती है॥ १३–१५॥

श्रीफलञ्च त्रिभिः खण्डैः त्रिमध्वक्तैर्जुहोति यः।
महतीं श्रियमाप्नोति भवेद्वैश्रवणोपमः॥ १६॥

जो बेल के तीन टुकड़ों में चीनी, गुड़ तथा शहद मिलाकर आहुति देता है उसे कुबेर के समान महती श्रीप्राप्त होती है॥ १६॥

नारिकेलफलं हुत्वा पृथुकेम समन्वितम्।
मुष्टिखण्डमितेनाशु पुष्टिमाप्नोति शाश्वतीम्॥ १७॥

एक मुट्ठी च्यूड़ा तथा नारियल मिलाकर किये गये हवन द्वारा शाश्वती पुष्टि की प्राप्ति होती है॥ १७॥

कदलीफलहोमेन पक्वाम्रफलहोमतः।
यद्यत् कामयते कामी तत्तदाप्नोति निश्चितम्॥ १८॥

मरीचलाजलवणैर्जुहुयाद् गौरसर्षपम् ।
शतयोजनदूरस्थां नारीमाकर्षयेद् ध्रुवम् ॥ १९ ॥

कदलीफल तथा पके आम द्वारा हवन करने से समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं । कालीमिर्च, लावा, लवण और पीली सरसों से होम करने पर सौ योजन दूर रहने वाली कामिनी भी वशीभूत हो जाती है ॥ १८–१९ ॥

जवापुष्पेण साज्येन शतमष्टोत्तरं हुनेत् ।
सप्ताहक्रमयोगेन त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ २० ॥

घृतयुक्त जवापुष्प से रोज १०८ आहुति सप्ताह पर्यन्त देना चाहिए । इससे त्रैलोक्य वशीभूत हो जाता है ॥ २० ॥

शाल्यन्नं सूपसंमिश्रं घृताक्त जहुयाद् यदि ।
निर्जने कानने वापि प्राप्नुयादन्नसञ्चयम् ॥ २१ ॥

सूप मिश्रित घृताक्त शालिधान के अन्न से निर्जन स्थल में हवन करने पर अन्न लाभ होता है ॥ २१ ॥

जातीफलस्य होमेन शतान्यूनेन नित्यशः ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं मण्डलान्नात्र संशयः ।
तिलमोदकहोमेन बलपुष्टिधनं लभेत् ।
मिष्टपक्वान्नहोमेन यावज्जीवं सुखी भवेत् ।
संविदा मधुरोपेतां शतमष्टोत्तरं हुनेत् ।
वशयेदखिलान्मन्त्री सदेवासुरमानुषान् ॥ २२ ॥

जायफल द्वारा नित्य अन्यून्य शत होम करने से वन्ध्या को निःसंदिग्ध रूप से सन्तान प्राप्ति होती है । तिल के लड्डू के हवन से बल-पुष्टि-धनलाभ, मिठाई के हवन द्वारा आजीवन सुख लाभ होता है । प्रतिज्ञा के अनुसार मधुर द्रव्य द्वारा १०८ बार होम करने से देव-असुर-मनुष्य के साथ समस्त जगत् वशीभूत हो जाता है ॥ २२ ॥

पञ्चतत्वस्य होमेन भवेत् पञ्चाननः स्वयम् ।
दीर्घजीवी जरामृत्युरोगशोकविवर्जितः ॥ २३ ॥

पंचतत्त्व से होम करने वाला स्वयं पंचानन (शिव) जैसा हो जाता है । वह दीर्घजीवी, जरा, मृत्यु, रोग तथा शोक रहित हो जाता है ॥ २३ ॥

नारीं रजोऽन्वितां कृत्वा पर्णानां शतकं सुधीः ।
प्रत्येकं दशधा जप्त्वा होमयेत्तदनन्तरम् ॥ २४ ॥
युगानामयुतं तेन चान्नदा पूजिता भवेत् ।

मातृवत् पालयेन्नित्यं साधकं पुत्रवत् सदा।
इति सामान्यतः प्रोक्ता विशेषविधिरुच्यते ॥ २५ ॥

इत्यन्नदाकल्पे चतुर्दशं नाम पटलम् ।

रजस्वला स्त्री द्वारा लगाये १०० पान को प्रत्येक को १० बार अभिमंत्रित करके होम करने से अयुत युग पर्यन्त अन्नदा पूजन की प्राप्ति होती है तथा देवी साधक का पालन पुत्रवत् करती है। यह सामान्य विधि का उपदेश है। अब मैं विशेष विधि कहता हूँ ॥ २४–२५ ॥

चौदहवाँ पटल समाप्त ।

पञ्चदशं पटलम्

श्रीशिव उवाच

अथ काम्यविधिं वक्ष्ये श्रूयतां ब्रह्मभैरव ! ।
साधकः साधयेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ॥ १ ॥

श्रीशिव कहते हैं—हे ब्रह्मभैरव ! अब मैं तुमसे काम्यविधि का वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा साधक देवदुर्लभ सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं, इसे सुनो ॥ १ ॥

सुन्दरीं यौवनोन्मत्तां सुनासां चारुहासिनीम् ।
द्विरष्टवर्षदेशीयां सदा कामाभिलाषिणीम् ॥ २ ॥
समानीयाभिषिच्याथ पुरतो रक्तकम्बले ।
उपविश्य तदङ्गेषु न्यासान् कल्पोक्ततद्गतान् ॥ ३ ॥

यौवनान्विता, उत्तम नासिका वाली, सुन्दर हास्य करने वाली, षोडश वर्ष की सुन्दरी कामिनी लाकर उसका तन्त्रोक्त विधान से अभिषेक करके सामने लाल कम्बल के आसन पर बैठाकर उसके अंगों में अपने तन्त्रमार्गानुसार न्यास आदि करके, इस कामिनी को देवता मानकर उसका सविधि पूजन करना चाहिए ॥ २–३ ॥

विधाय देवताबुद्ध्या पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।
ततः प्रत्यङ्गमालोक्य जपेन्नियतमानसः ॥ ४ ॥

उसका पूजन देवता बुद्धि से विधिपूर्वक करने के उपरान्त उस देवी रूपिणी कामिनी के प्रत्येक अंगों का दर्शन करते हुए संयत मन से जप करे ॥ ४ ॥

पद्मं दृष्ट्वा तथा बिम्बं चामरं शिखरं तथा ।
खञ्जरिं रविबिम्बञ्च तिलपुष्पं सरोवरम् ॥ ५ ॥
त्रिसूत्रं वीक्ष्य जप्त्वा तु शतशः शुद्धभावतः ।
मुखप्रसादं सुमुखं सुलोचनं सुहास्यकम् ॥ ६ ॥
सुकेशं सुगतिं गन्धं सुजनं सुखमेव च ।
लभते च यथासङ्ख्यं शृणु भैरव ! चाद्भुतम् ॥ ७ ॥

हे भैरव ! पद्म, बिम्ब, चामर, शिखर, खंजरि, रविबिम्ब, तिलपुष्प, सरोवर तथा त्रिसूत्र को देखते हुए जो शुद्ध भाव से १०० बार जप करते

हैं, उन्हें क्रम से मुख की प्रसन्नता, उत्तममुख, उत्तमनेत्र, उत्तमहास्य, उत्तमकेश, उत्तमगति, उत्तमगन्ध, उत्तमसुजन तथा उत्तमसुख प्राप्त होता है।

पद्म	अर्थात्	मुख	:	ध्यानफल	मुख प्रसन्नता प्राप्ति।
बिम्ब	,,	ओष्ठ	:	,,	उत्तम हास्य प्राप्ति।
चामर	,,	केश	:	,,	उत्तम केश प्राप्ति।
शिखर	,,	मस्तक	:	,,	उत्तम मुख प्राप्ति।
खंजरि	,,	चक्षु	:	,,	उत्तम नेत्र प्राप्ति।
रविबिम्ब	,,	सिन्दूर का टीका	:	,,	सुगति प्राप्ति।
तिलपुष्प	,,	नासिका	:	,,	उत्तम गन्ध प्राप्ति।
सरोवर	,,	नाभि	:	,,	सुजन संग प्राप्ति।
त्रिसूत्र	,,	त्रिवली	:	,,	सुख प्राप्ति।

तात्पर्य यह है कि जिस अंग को देखते हुए १०० संख्यक जप किया जायेगा, उसका ध्यान फल ऊपर अंकित प्रकार से प्राप्त होगा ॥ ५–७ ॥

रजोवस्थां समानीय तद्योनौ स्वेष्टदेवताम्।
पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं प्रजपेन्मनुम् ॥ ८ ॥
शतत्रयं च षट्त्रिंशदधिकं प्रत्यहं जपन्।
शवसाधनसाहस्रं फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ९ ॥

रजस्वला स्त्री को पूजन स्थल में लाकर उसकी योनि में इष्टदेवता की स्थिति की भावना करके योनि को देखते हुए महानिशा (अर्द्धरात्रि) में तीन दिन तक नित्य ३३६ बार जप करने से एक सहस्र शवसाधना का फल मिलता है ॥ ८–९ ॥

दृष्ट्वा योनिं जपं कुर्यान्न भोगे मानसं भवेत्।
ऋतुयुक्तां लतां पश्यन्नयुतं यस्तु साधयेत् ॥ १० ॥
अनर्गलापि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत्।
छन्दोवहा परा वाणी तस्य सर्वविधा भवेत् ॥ ११ ॥
तन्नाम्ना सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः।
तस्य वाक्यस्य वैशिष्टयाज्जडा भवन्ति वाग्मिनः ॥१२॥

योनि को देखते हुए जप पूजन करे, किन्तु मन को संयत रखे और मन में भोग (काम) भावना को कदापि न लाये। जो व्यक्ति ऋतुमती स्त्री की योनि को संयमित चित्त से देखते हुए १०००० जप करता है, उसके मुख से छन्दो युक्त गद्यपद्यमयी वाणी निरंतर निकलने लगती है और सुधीजन उसका नाम पुकारते हुए उसे हर्षयुक्त होकर प्रणाम करते हैं। उस साधक के वाक् वैचित्र्य को देखकर पण्डितों का मुख भी स्तब्ध हो जाता ॥१०–१२॥

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि प्रयोगं भुवि दुर्लभम् ।
स्वनारीं दीक्षितां मत्तां समानीय स्वतल्पके ॥ १३ ॥
निशीथे प्रत्यहं मन्त्री पूजयेद्देवताधिया ।
भूत्वा स्वयं शिवमयो देवीं तामन्नदां स्मरन् ॥ १४ ॥
हृदये हृदयं दत्त्वा योनौ लिङ्गं निवेश्य च ।
मुखे मुखस्य संयोज्य गाढालिङ्गनयोगतः ॥ १५ ॥
शतमष्टोत्तरं नित्यं योजपेत् प्रयतो नरः ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य मासमात्रेण निश्चितम् ॥ १६ ॥

अब मनुष्य-दुर्लभ अन्य प्रकार का प्रयोग कहता हूँ। अपनी दीक्षिता तथा प्रमत्ता स्त्री को अपनी शय्या पर बैठाकर देवता की भावना करके उसका पूजन रात्रि में नित्य करे। स्वयं को शिवमय तथा स्त्री को अन्नदा देवी मानकर स्त्री के हृदय से अपना हृदय, उसके मुख से अपना मुख तथा उसकी योनि में अपना लिङ्ग योजित करके गाढ़ आलिंगन करते हुए तब भी संयत रहकर जो व्यक्ति १०८ बार जप करता है उसे एक माह में निश्चित रूप से सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १३–१६ ॥

काम्यसिद्धिर्द्विमासेन त्रिमासेनार्थसिद्धिकृत् ।
चतुर्मासेन वाक्सिद्धिर्देहसिद्धिस्तु पञ्चमे ॥ १७ ॥
षष्ठे मासि मनः सिद्धिरिच्छासिद्धिस्तु सप्तमे ।
अष्टमेऽष्टौ महासिद्धिर्नवमे निधिपो भवेत् ॥ १८ ॥
दशमे दशदिग्जेता विजयी विनयी भवेत् ।
एकादशे तु रुद्राणामधिपो जायते ध्रुवम् ।
शिवत्वं द्वादशे मासि प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ १९ ॥
अब्देन सिद्धयः सर्वाः प्रभवन्ति न संशयः ।
स भूमिवलये नित्यं नित्यं भुवि पुरन्दरः ॥ २० ॥
इच्छामृत्युर्भवेत्तस्य चिरजीवी निरामयः ।
अन्नदा पुत्रपौत्रान्तं तस्य गेहे स्थिरा भवेत् ॥ २१ ॥

इस प्रकार से २ मास साधना द्वारा कामनासिद्धि, तीन मास में अर्थसिद्धि, चार मास में वाक्सिद्धि, पंचम मास में देहसिद्धि, षष्ठ मास में मनःसिद्धि, सप्तम मास में इच्छासिद्धि, अष्टम मास में महासिद्धि प्राप्त होती है। साधक नवम मास पर्यन्त साधना करने पर निधिपति, दशम मांस में दशों दिशाओं का विजेता तथा विनयी हो जाता है। ग्यारहवें मास में वह रुद्रगणों का अधिपतित्व प्राप्त करता है। बारहवें मास में उसे शिवत्व तथा सर्वसिद्धि निःसंदिग्ध रूपेण प्राप्त हो जाती है। वह इच्छा मृत्यु तथा रोगशून्य

होकर चिरजीवन प्राप्त करता है। अन्नदा देवी उसके गृह में पुत्र पौत्रान्त पर्यन्त स्थिर होकर रहती हैं ॥ १७–२१ ॥

अथान्यत् साधनं वक्ष्ये सावधानोऽवधारय।
परकीयलताचक्रे सम्पूज्य स्वेष्टदेवताम् ॥ २२ ॥
अष्टोत्तरं शतं पूर्वं चक्रवक्त्रं जपेद् बुधः।
ततस्तान् नव पुष्पेण यजन्नष्टोत्तरं शतम् ॥ २३ ॥
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा जपेदष्टोत्तरं शतम्।
षोडशाहेन च भवेत् सत्यं देव्या निदेशनम् ॥ २४ ॥

अब एक अन्य साधन प्रणाली कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। एक परकीया (पराई) स्त्री को यन्त्र रूप भावना करके उसमें अपने इष्टदेवता की भावना करके पूजन करे और १०८ बार पुष्प चढ़ाकर पूजन करके पूर्णाहुति प्रदान करके पुनः १०८ बार मूलमन्त्र जपे। ऐसा १६ दिन करने से साधक बलवान्, धनवान् तथा वक्ता हो जाता है ॥ २२–२४ ॥

अथान्यत् साधनं पुण्यं शृणु तत् परमं महत्।
अन्ने योनौ तथा मद्ये मांसे मत्स्ये च साधकः।
रक्तवस्त्रे रक्तपुष्पे सुरक्ते सूर्यमण्डले।
निजेष्टदेवतां तत्र ध्यात्वा चाष्टशतं जपेत्।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य निर्विकल्पेन चेतसा ॥ २५ ॥
एषु सर्वेषु सततं जातिवृत्तिं न चिन्तयेत्।
निर्विकल्पो भवेद्यस्य स भवेदन्नदाप्रियः ॥ २६ ॥

पुनः परत्र पुण्यप्रद अन्य साधन कहता हूँ, सुनो! अन्न, योनि, मद्य, मांस, मत्स्य, रक्तवस्त्र, रक्तपुष्प तथा सुरक्त सूर्यमण्डल में साधक निर्विकल्प चित्त से इष्टदेवता का ध्यान करके १०८ बार मूलमन्त्र जपे। इससे मन्त्र-सिद्धि होती है, इसमें जातिविचार नहीं किया जाता। जो निर्विकल्प भाव से इस प्रकार का अनुष्ठान करता है, वह अन्नदा देवी का प्रिय हो जाता है ॥ २५–२६ ॥

एवमन्यत् प्रवक्ष्यामि महाचीनसमुद्भवम्।
येनानुष्ठितमात्रेण शीघ्रं देवी प्रसीदति ॥ २७ ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां कुह्वां वा रविसङ्क्रमे।
कुमारीपूजनं कुर्याद् यथाविभवमात्मनः ॥ २८ ॥
वस्त्रालङ्करणाद्यैश्च भक्ष्यैर्भोज्यैः सुविस्तरैः।
पञ्चतत्वादिभिः सम्यग्देवी बुद्ध्या सुसाधकः ॥ २९ ॥

अब अन्य प्रकार का महाचीन क्रम साधन कहता हूँ, जिसके अनुष्ठान

करने मात्र से देवी अन्नदा अतिशीघ्र प्रसन्न हो जाती हैं। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या अथवा संक्रान्ति के दिन अपने सामर्थ्य के अनुसार वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य तथा पंचतत्त्व द्वारा देवी की भावना से कुमारी पूजन करना चाहिए ॥ २७–२९ ॥

एकवर्षा भवेत् सन्ध्या, द्विवर्षा तु सरस्वती।
त्रिवर्षा च त्रिधा मूर्त्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका ॥ ३० ॥
सुभगा पञ्चवर्षा च षड्वर्षा च उमा भवेत्।
सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा च कुब्जिका ॥ ३१ ॥
नवभिः कालसन्दर्भा दशभिश्चापराजिता।
एकादशे तु रुद्राणी द्वादशाब्दे तु भैरवी ॥ ३२ ॥
त्रयोदशे महालक्ष्मी द्विसप्ता पीठनायिका।
क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चान्नदा मता ॥ ३३ ॥
एवं क्रमेण सम्पूज्य यावत् पुष्पं न जायते।
पुष्पिता वापि सम्पूज्य तत्पुष्पादानकर्मणि ॥ ३४ ॥
वाग्भवेन जलं दत्त्वा मायया पादशोधनम्।
श्रीबीजेनार्घ्यदानञ्च यच्चाचमनमीरितम् ॥ ३५ ॥
चन्दनं कामबीजेन वौषडन्तेन पुष्पकम्।
परप्रासादबीजेन धूपदीपौ निवेद्य च ॥ ३६ ॥
मूलेन कारणं शुद्धिं नैवेद्यं विनिवेदयेत्।
पूर्वमाचमनं दद्यात् ताम्बूलं मूलमन्त्रतः ॥ ३७ ॥
पुनर्मूलेन मालाञ्च गन्धं पुष्पं निवेदयेत्।
उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गके क्रमात् ॥ ३८ ॥
पञ्चपुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणमेद्देवताधिया।
अष्टोत्तरशतं मूलं जप्त्वा तद्गतमानसः ॥ ३९ ॥
जपं समर्पयेत्तस्याः पादपद्मे विचक्षणः।
ततः स्वदेवता स्तोत्रैः संस्तूय जगदम्बिकाम् ॥ ४० ॥
प्रदक्षिणां प्रणामञ्च कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत्।
पश्चाच्च दक्षिणां कुर्यात् रजतस्वर्णमौक्तिकैः ॥ ४१ ॥
घ्नन्ति विघ्नान् पूजितास्तु तथा शत्रुं महोत्कटम्।
व्याधयः सर्वरिष्टानि तन्निमित्तानि यानि च ॥ ४२ ॥
डाकिन्यो दुर्ग्रहा नागा भूतवेतालचेटकाः।
राक्षसाः प्रेतगन्धर्वाः कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः ॥ ४३ ॥
पलायन्ते ततः क्षिप्रं स्थिता नश्यन्ति निश्चितम्।

ब्रह्माण्डोदरमध्यस्था देवा देव्यश्च सर्वशः ।
कुमारीपूजनादेव पूजिताः स्युर्नसंशयः ॥ ४४ ॥

एकवर्षा कुमारी को सन्ध्या, द्विवर्षा को सरस्वती, त्रिवर्षा को त्रिमूर्त्ति, चतुर्वर्षा को कालिका, पंचवर्षा को सुखदा, षड्वर्षा को उमा, सप्तवर्षा को मालिनी, अष्टवर्षा को कुंजिका, नववर्षा को कालसन्दर्भा, दशवर्षा को अपराजिता, एकादशवर्षा को रुद्राणी, द्वादशवर्षा को भैरवी, त्रयोदशवर्षा को महालक्ष्मी, चतुर्दशवर्षा को पीठनायिका, पंचदशवर्षा को क्षेत्रज्ञा तथा षोडशवर्षा को अन्नदा कहते हैं। जबतक कुमारी रजस्वला नहीं होती, तबतक इसी क्रम से पूजन करना चाहिए। किन्तु जहाँ पुष्पदान करना हो, वहाँ पुष्पिता (जो रजस्वला हो चुकी हो) का पूजन करना चाहिए।

कुमारी पूजन क्रम में 'ऐं' मन्त्र द्वारा जल देना चाहिए। 'ह्रीं' मन्त्र से पादशोधन, 'श्रीं' बीज से अर्घ्यदान, 'वं' बीज से आचमनीय, 'क्लीं' बीज से चन्दनानुलेपन, 'वौषट्' से पुष्प' 'हं' बीज से धूपदीप निवेदित करके मूलमन्त्र द्वारा मद्य प्रदान करे। अब पूर्ववत् पुनराचमनीय देकर (वं बीज से), मूलमन्त्र से ताम्बूल, पुनः मूलमन्त्र से ही माला गन्ध तथा पुष्प निवेदित करे। मुख, हृदय, आधार, पद तथा सर्वांग में ५ बार पुष्पांजलि देकर देवता की भावना करके कुमारी को प्रणाम करना चाहिए। विद्वान् साधक तद्गत चित्त से १०८ बार जप करके कुमारी के चरण कमल में जप समर्पण करके अपने इष्ट देवता का स्तव पाठ करके जगदम्बिका की स्तुति करे। तत्पश्चात् साधक प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करके सिद्धि का अधीश्वर हो जाता है। इसके पश्चात् सामर्थ्य के अनुसार कुमारी को रजत, स्वर्ण तथा मुक्ता द्वारा दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार की पूजा से समस्त विघ्न शान्त हो जाते हैं। उत्कट शत्रु, व्याधि तथा अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं और डाकिनी, दुष्टग्रह, नाग, भूत, बैताल, चेटक, राक्षस, प्रेत, गन्धर्व, कूष्माण्ड तथा ब्रह्मराक्षसादि शीघ्र पलायित एवं नष्ट हो जाते हैं। कुमारी पूजन से ब्रह्माण्ड के समस्त देवताओं का पूजन हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है ॥ ३०–४४ ॥

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि शृणु ब्रह्मन् समाहितः ।
न च योषित्समो धाता न विष्णुर्नापि शङ्करः ।
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणा स्त्रिय एव विभूषणम् ।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा न प्रसीदति ।
क्षुब्धायां योषिति क्षुब्धा सदा देवी न संशयः ॥ ४५ ॥
सा चेद्द्रवति संक्षुब्धा धनमायुष्यनाशिका ।
वृथा सदक्षिणो होमो यद्यप्रियकरः स्त्रियाः ।
बुद्धिर्बलं यशोरूपमायुर्वित्तं सुतादयः ।

नश्यन्ति तस्य सर्वाणि योषिन्निन्दापरस्य च ।
मातापित्रोर्वरं त्यागस्त्याज्यः शम्भुस्तथा हरिः ।
वरं देवी परित्याज्या नैव त्याज्या स्वकामिनी ॥ ४६ ॥
वरं जनमुखान्निन्दा वरं वा गर्हितं यशः ।
वरं प्राणाः परित्याज्या न कुर्यादप्रियं स्त्रियाः ॥ ४७ ॥
न धाता नाच्युतः शम्भुर्न च वा सा सनातनी ।
योषिदप्रियकर्त्तारं रक्षितुं न क्षमो भवेत् ॥ ४८ ॥
श्मशानसाधनं नात्र न चिताशवसाधनम् ।
योषित्पूजनमात्रेण अन्नपूर्णा सुसिद्धिदा ॥ ४९ ॥

इत्यन्नदाकल्पे सिद्धिसाधनादिविवरणं नाम पञ्चदशं पटलम् ।

हे ब्रह्मभैरव ! अब अन्य प्रकार से साधन कहता हूँ, समाहित चित्त से सुनो । ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी स्त्री के समान नहीं होते हैं । स्त्री ही देवता, प्राण, विभूषण रूप होती है । सदा स्त्री में ही देवता की भावना करो, अन्यथा अन्नदा देवी प्रसन्न नहीं होतीं । स्त्री के क्षुब्ध होने से देवी क्षुब्ध हो जाती हैं । यह निःसंदिग्ध है । स्त्री के क्षुब्ध होने से धन, आयु विनष्ट हो जाते हैं । जो स्त्री के विरुद्ध कार्य करते हैं उनका न्यास-पूजन व्यर्थ है । जप, स्तव-दक्षिणा के साथ किया गया हवन भी वृथा है । स्त्री की निन्दा करने वाले की बुद्धि, बल, यश, रूप, आयु, वित्त, पुत्रादि विनष्ट हो जाते हैं । माता-पिता का त्याग भले ही कर दे, हरि-हर का त्याग कर दे, तथापि अपनी स्त्री का त्याग कदापि नहीं करना चाहिए । भले ही लोकनिन्दा तथा अपयश को ग्रहण कर ले, अपना प्राण त्याग भी कर दे, तथापि स्त्री के विरुद्ध कार्य न करे । ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा सनातनी भगवती भी स्त्री का अप्रिय करने वाले की रक्षा नहीं कर सकते । जो अन्नदा देवी की साधना करते हैं, उनके लिए श्मशान अथवा चिता साधन का कोई प्रयोजन नहीं है । एकमात्र स्त्री के माध्यम से अन्नपूर्णा ही सिद्धिप्रदा हो जाती हैं ॥ ४५–४९ ॥

पन्द्रहवाँ पटल समाप्त ।

षोडशं पटलम्

श्रीब्रह्मभैरव उवाच

साधनानि च सर्वाणि श्रुतानि तव सुव्रत।
इदानीं वद देवेश ! स्तोत्राणि कवचानि च ॥ १ ॥

ब्रह्मभैरव कहते हैं—हे सुव्रत ! हे देवेश ! समस्त साधनों का श्रवण आपके द्वारा किया। अब स्तोत्र तथा कवच का वर्णन करिये ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

कथयामि तव स्नेहात् स्तोत्राणि कवचानि च।
अन्नपूर्णाप्रीतिदानिं सावधानोऽवधारय ॥ २ ॥
ह्रींकारं प्रथमं नमो भगवति स्वाहावसानां ध्रुवं,
मन्त्रं सप्तदशाक्षरं जपति ते माहेश्वरि प्रोक्षितम्।
ध्यायेऽम्बे ! तरुणारुणं तव वपुर्नित्यान्नपूर्णे शिवे,
गेहे तस्य विराजते सरभसं दिव्यान्नराशिर्ध्रुवम् ॥ ३ ॥

श्रीशिव कहते हैं—तुम्हारे स्नेह के कारण मैं अन्नपूर्णा का प्रीतिपद स्तव कवच कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। हे माहेश्वरी ! जो व्यक्ति 'ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' रूपी तुम्हारा १७ अक्षरों वाला मन्त्र जपता है, हे अन्नपूर्णे शिवे ! तुम्हारे नवोदित सूर्य के समान शरीर का जो ध्यान करता है, उसके गृह में दिव्य अन्नराशि सदा बनी रहती है ॥ २–३ ॥

ह्रींकारमूर्ति कमनीयवक्त्रां चन्द्राङ्करेखान्वितभालभागाम्।
ईशानकान्तां प्रणमामि नित्यां लक्ष्मीविलासास्पदपादपीठाम् ॥ ४ ॥

तुम्हारी 'ह्रीं' रूपी मूर्त्ति है, कमनीय अर्द्धचन्द्र से अंकित ललाट है, तुम शिव गृहिणी हो, नित्य हो तथा तुम्हारे चरणपीठ पर लक्ष्मी विराजित रहती है, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

नमोऽस्तु तुभ्यं गिरिराजकन्ये नमोऽस्तु कामान्तकवल्लभायै।
नमोऽस्तु पङ्केरुहलोचनायै नमः शिवायै शशिभूषणायै ॥ ५ ॥

हे गिरिराजपुत्री ! तुम्हें नमस्कार ! तुम शिववल्लभा हो, तुम्हें नमस्कार ! तुम पद्माक्षी हो, तुम्हारे ललाट पर चन्द्रमा भूषण के रूप में विराजित है। तुम्हें नमस्कार ॥ ५ ॥

वामे करेऽमृतमयं कलशञ्च दक्षे
स्वर्णाङ्कितां ननु पलान्नमयीञ्च दर्वीम्।

चित्रां सुवर्णवसनां गिरिशस्य कान्तां
सत्पद्मपत्रनयनां मनसाहमीडे ॥ ६ ॥
वामे माणिक्यपात्रं मधुरसभरितं बिभ्रतीं पाणिपद्मे
दिव्यैरन्नैः प्रपूर्णां मणिमयवलये दक्षिणे रत्नदर्वीम् ।
रक्ताङ्गी पीनतुङ्गस्तनभरविलसंस्तारहारां त्रिनेत्रां
वन्दे पूर्णेन्दुबिम्बप्रतिनिधिवदनामम्बिकामन्नपूर्णाम् ॥ ७ ॥

तुम्हारे बायें हाथ में अमृतमय कलस है, दाहिने हाथ में पलान्नयुक्त लोहदर्वी है। तुम विचित्र सुवर्ण वर्ण वाले वस्त्रों को धारण करती हो। तुम शिव की पत्नी तथा पद्मपत्राक्षी हो, मैं तुम्हारा मन ही मन स्मरण करता हूँ। तुमने बायें हाथ में माणिक्यमय मधुर रसयुक्त कलश धारण किया है। तुम दिव्यान्न पूर्णा हो, तुम्हारे मणिनिर्मित वलय से युक्त दाहिने हाथ में रत्नदर्वी है। तुम रक्तवर्णा हो, तुम्हारे स्तन स्थूल तथा उन्नत हैं जो लम्बे हारों के भार से विनत है। तुम त्रिनेत्रा हो। तुम्हारा मुखमण्डल पूर्णचन्द्र के समान उज्ज्वल है। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ॥ ६–७ ॥

भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतोत्थात्
सुतदुहितृकलत्रोपद्रवेणानुजातम् ।
विलसदमृतदृष्टया वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तम्
सकलभुवनमातस्त्राहि मामन्नपूर्णे ॥ ८ ॥

हे भगवती ! मैं पुत्र-कन्या तथा स्त्री जनित पापमय भवरोग से पीड़ित हूँ तथा विभ्रान्त चित्त हूँ। हे समस्त भुवनो की जननी ! तुम अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टि के द्वारा मेरा अवलोकन करके त्राण दिलाओ॥ ८ ॥

माहेश्वरीमाश्रितकल्पवल्लीमहं भवच्छेदकरीं भवानीम् ।
क्षुधार्त्तजायातनयाभ्युपेतस्त्वामन्नपूर्णां शरणं प्रपद्ये ॥ ९ ॥

तुम माहेश्वरी हो, आश्रितों के लिए कल्पलता के समान हो। तुम भवदुःख नष्ट करने वाली हो। भवानी तुम अन्नदा हो, मैं क्षुधार्त्त स्त्री-पुत्र द्वारा युक्त हूँ। मैं तुम्हारी शरण लेता हूँ॥ ९ ॥

दारिद्र्यदावानलदह्यमानं नमोऽन्नपूर्णे गिरिराजकन्ये ।
कृपाम्बुवर्षैरभिषिञ्च त्वं मां त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिम् ॥१०॥

मैं दारिद्र्यरूपी दावानल में जला जारहा हूँ। हे अन्नपूर्णे, गिरिराज पुत्री ! आप अपने चरणकमलों के दास मुझ पर कृपारूपीजल की वर्षा कीजिये ॥१०॥

इत्यन्नपूर्णास्तवरत्नमेत् श्लोकाष्टकं यः पठतीह भक्त्या ।
तस्मै ददात्यन्नसमृद्धिराशिं श्रियञ्च विद्याञ्च परत्र मुक्तिम् ॥११॥

इत्यन्नदाकल्पे अन्नपूर्णास्तोत्रं समाप्तम् ।

इस अन्नपूर्णा श्लोकाष्टक को जो भक्ति के साथ पढ़ता है। देवी अन्नदा उसे अन्न, समृद्धि, श्रीविद्या तथा मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ११ ॥

अन्नपूर्णा स्तोत्र समाप्त।

श्रीशिव उवाच

कवचं कथयिष्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
यदुक्तं शाम्भवीतन्त्रे स्वयं देव्या मया श्रुतम् ॥ १ ॥
त्वमेवं ऋषिरस्येह भविता नात्र संशयः।
अस्याः समस्तविद्यानां कवचानाञ्च भैरव! ॥ २ ॥

श्रीशिव कहते हैं—हे भैरव! शांभवीतन्त्र में देवी ने स्वयं मुझसे जो कहा, वह मैं कहता हूँ। यह दुर्लभ देवी कवच तुम्हें सुनाता हूँ। अन्नदा देवी के कवच के तुम ऋषि हो, यह निःसंशय है ॥ १–२ ॥

कवचस्यास्य माहात्म्यं वक्तुं नालं महेश्वरः।
वक्तुं कोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिसहस्रकैः ॥ ३ ॥
यस्य प्रसादात् गरलं पीत्वा नाहं मृतिं गतः।
त्वमस्य जगतः कर्त्ता भविष्यसि पुनः पुनः ॥ ४ ॥
भाव्यर्थो भूतवद्वापि गृह्यते शास्त्रसञ्चरे।
तेन त्वं ऋषिरद्यैव भव नूनं मया कृतः ॥ ५ ॥

यदि मेरे करोड़ों मुख तथा जिह्वा हो जायें, फिर भी मैं इस कवच की महत्ता नहीं कह सकता। जिसकी कृपा से मैं विषपान करने पर भी नहीं मरा तथा जिनकी कृपा से तुम (ब्रह्मभैरव) पुनः पुनः जगत् के कर्त्ता बनोगे, उनके कवच का माहात्म्य कैसे कहा जा सकता है? शास्त्र मार्ग में उक्त है कि भावी विषय भी अतीत के समान कहा जाता है। अतः भविष्यत् में इस कवच के ऋषि होने पर भी आज ही तुम मेरे द्वारा ऋषि कहे जा रहे हो ॥ ३–५ ॥

अस्य सर्वभूतसिद्धिप्रदस्य कवचस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीछन्दोऽन्नपूर्णा देवता धर्मार्थकाममोक्षे विनियोगः।

ह्रींकारो मे शिरः पातु नमो भालं सदावतु।
भगवती श्रुतिं पातु माहेश्वरी च चक्षुषी ॥ ६ ॥
अन्नपूर्णा मुखं पातु स्वाहा जिह्वां सदावतु।
सप्ताधिकदशार्णा मे नासिके पातु सर्वदा ॥ ७ ॥

अमाया प्रणवाद्यैषा तथा सप्तदशाक्षरी ।
कण्ठं ग्रीवां तथा स्कन्धौ भुजौ मे पातु सर्वदा ॥ ८ ॥
श्रीबीजाद्या सप्तदशी हृदयं स्तनयुग्मकम् ।
पायान्नित्यश्चान्नपूर्णा श्रीसौभाग्यप्रदायिनी ॥ ९ ॥
कामाद्या सा सप्तदशी उदरं नाभिमण्लम् ।
पार्श्वौ कुक्षियुगं पातु सर्वकामप्रदायिनी ॥ १० ॥
गुह्यं लिङ्गं मुष्कयुग्मं पातु सक्थीनि सर्वदा ।
वाग्भवाद्या महादेवी मूलाधारनिवासिनी ॥ ११ ॥
तारमायाबीजयुग्मपूर्विकाऽष्टादशाक्षरी ।
गुल्फौ पादौ पादतलं पायादाधाररूपिणी ॥ १२ ॥
श्रीमायाबीजयुग्माद्या सा पराष्टादशाक्षरी ।
पृष्ठं कङ्कालदेशश्च सन्धिस्थानं सदावतु ॥ १४ ॥
तारमायारमापूर्वा सोनविंशाक्षरी परा ।
नखरोमाणि दन्तांश्च तत् सन्धीनवतात् सदा ॥ १५ ॥
तारो माया रमा कामः षोडशार्णा सनातनी ।
शिरसः पादपर्यन्तं सर्वाङ्गमभितोऽवतु ॥ १६ ॥
एकाक्षरी ब्रह्मरन्ध्रे मायाबीजस्वरूपिणी ।
नमो माया भ्रुवोर्मध्ये त्र्यक्षरी परमा कला ॥ १७ ॥
ह्लीं स्वाहा त्र्यक्षरी पातु विशुद्धे कण्ठमण्डले ।
ह्लीं श्रीं स्वाहा हृदि सदा पातु मे चतुरक्षरी ॥ १८ ॥
ताराद्या सैव पञ्चांगी मणिपूरे सदावतु ।
तारो माया रमा कामः स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा ॥ १९ ॥
षड्दले कमले पातु स्वाधिष्ठाने षडक्षरी ।
लक्ष्मीर्माया वह्निजाया मूलाधारे चतुर्दले ॥ २० ॥
गुह्यदेशे सदा पातु चतुरक्षररूपिणी ।
तारो माया रमा पातु वातपित्तगणेषु च ॥ २१ ॥
नाडीसंस्था त्र्यक्षरीयं पायान्नाडीगणेषु मे ।
ॐ ह्लीं श्रीं क्लीं ऐं नमोहन्ता सप्तांगी सप्तधातुषु ॥ २२ ॥
त्वगसृग्मांसमेदास्थिमज्जाशुक्रेषु रक्षतु ।
तारं वाणी च भुवना लक्ष्मीः कामो वधूस्तथा ॥ २३ ॥
हृद्वह्निललना पातु दशवर्णस्वरूपिणी ।
इन्द्रियार्थान् दश सदा पातु शङ्करवल्लभा ॥ २४ ॥

ब्राह्मी पूर्वे सदा पातु वह्नौ माहेश्वरी मम ।
दक्षिणे पातु कौमारी वैष्णवी नैर्ऋतेऽवतु ॥ २५ ॥
पश्चिमे पातु वाराही वायव्यां वायवी तथा ।
उत्तरे पातु चामुण्डा महालक्ष्मी शिरोऽवतु ॥ २६ ॥
ऊर्ध्वाधः सर्वदा पातु देवी पादद्वयं मम ।
इन्द्राद्या दशदिक्पाला वज्राद्याश्चायुधा बहिः ॥ २७ ॥
रक्षन्तां मे दिग् विदिक्षु बहिः सर्वत्र गोचराः ।
इति ते कथितं पुण्यं सारात्साररतरं महत् ॥ २८ ॥
सर्वसिद्धिप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ।
एकद्वित्रिचतुष्कालं क्रमान्नित्यं पठेद् यदि ॥ २९ ॥
स भूमिवलये वत्स ! भवेद्भूमिपुरन्दरः ।
पुत्रवान् धनवान् श्रीमान् गोमहिषसमृद्धिमान् ॥ ३० ॥
भूर्जे विलिख्य तद्यन्त्रं मध्ये षट्कोणमुत्तमम् ।
विलिखेद् बीजयुग्मान्तः साध्यसाधकयोर्लिपिम् ॥ ३२ ॥

सर्वभूत सिद्धिप्रद कवच के ऋषि ब्रह्मभैरव हैं, छन्द है गायत्री, देवता हैं अन्नपूर्णा एवं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सिद्धि के लिए इसका विनियोग होता है । 'ह्रीं' हमारे मस्तक की रक्षा करें । नमः शब्द हमारे ललाट की रक्षा करें । भगवती हमारी रक्षा करें । माहेश्वरी चक्षु की, अन्नपूर्णा मुख की, स्वाहा जिह्वा की तथा 'ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' हमारे नासिका की रक्षा करें । प्रणवादि युक्त सप्ताक्षर मन्त्र हमारे कण्ठ, ग्रीवा, स्कन्धद्वय तथा भुजद्वय की रक्षा करें । 'श्रीं' बीजादि सप्तदशाक्षर मन्त्रमयी श्री तथा सौभाग्यदायिनी अन्नपूर्णा हमारे हृदय तथा स्तनयुगल की रक्षा करें । काम-बीजादि युक्त सप्तदशाक्षर मन्त्रमयी सर्वकामदायिनी देवी हमारे पार्श्वद्वय तथा कुक्षिद्वय की रक्षा करें । 'ऐं' बीजादि युक्त सप्तदशाक्षर मन्त्रमयी मूलाधार निवासिनी महादेवी हमारे गुह्यदेश, लिंग, अण्डकोषद्वय की रक्षा करें । 'ॐ ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' रूपी अष्टदशाक्षर मन्त्र हमारे ऊरुद्वय, जानुद्वय तथा जंघाद्वय की रक्षा करें । श्री तथा २९ अक्षर मन्त्र हमारे नख, रोम, दन्त तथा सर्वांग की रक्षा करें । 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं' बीजादि षोडशाक्षर मन्त्रयुक्त सनातनी देवी हमारे मस्तक से लेकर पैर पर्यन्त समस्त अंगों का रक्षण करें । 'ह्रीं बीजरूपिणी देवी ब्रह्मरन्ध्र की, 'ह्रीं नमः' भ्रूमध्य की, 'ह्रीं स्वाहा' करतल की, 'ह्रीं श्रीं स्वाहा' हृदय की, 'ॐ ह्रीं श्रीं स्वाहा' रूपी पंचाक्षर मंत्र मणिपूर की, 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा' यह षडक्षर मन्त्र स्वाधिष्ठान की, 'श्रीं ह्रीं स्वाहा' मूलाधार की, यही चतुरक्षर रूपिणी देवी गुह्य देश की, 'ॐ ह्रीं श्रीं' हमारे वात पित्त तथा

कफ की, यही त्र्यक्षर मन्त्र हमारे नाड़ी समूह की, 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं नमः' रूपी सप्ताक्षर मन्त्र सप्तधातु की, 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा' रूपी दस वर्णमयी शंकरप्रिया हमारे दसों इन्द्रियों का रक्षण करें। ब्राह्मी पूर्व में, माहेश्वरी अग्निकोण में, कौमारी दक्षिण में, वैष्णवी नैर्ऋत्यकोण में, वाराही पश्चिम में, वायवी वायुकोण में तथा चामुण्डा उत्तर दिशा में हमारी रक्षा करें। महालक्ष्मी हमारे मस्तक, ऊर्ध्व तथा अधः का रक्षण करें। अन्नदा देवी हमारे पदद्वय की, इन्द्रादि दिक्पाल तथा वज्रादि आयुधगण दिग्विदिग्, बाह्य-आभ्यन्तर का रक्षण करें। हे वत्स ! यह महत् सारतम समस्त सिद्धिप्रद अद्भुत कवच है। जो व्यक्ति एक, दो, तीन तथा चारों कालों में क्रमानुसार इस स्तव को पढ़ता है, वह मर्त्यलोक में इन्द्र के समान विचरण करता है और वह पुत्रवान्, धनवान्, श्रीमान्, गो, महिष, अश्व, हाथी आदि समृद्धि से युक्त तथा मनुष्यों का अधिपति हो जाता है। १०८ बार इसके पाठ से पुरश्चरण होता है ॥ १६–३२ ॥

दलेष्वष्टसु संलिख्य युगशः षोडशस्वरान् ।
तद्बहिर्मातृकावर्णैः पुटितं क्षितिमण्डले ॥ ३३ ॥
विलिख्य पुरतो बाह्ये संवेष्टय्च कवचं लिखेत् ।
रक्तवस्त्रेण संवेष्टय्च वध्नीयाद्रक्ततन्तुना ॥ ३४ ॥
लाक्षया रक्तवर्णेन संवेष्टय्च गुटकीकृतम् ।
प्राणप्रतिष्ठाविधिना प्राणांस्तत्र नियोजयेत् ॥ ३५ ॥
योनिगर्भान्तराले तां गुटिकां स्थापयेद्बुधः ।
कुलाचारविधानेन पूजयेदन्नदां पराम् ॥ ३६ ॥
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा समर्प्य तत्र साधकः ।
पठेत् कवचमेतत्तु ततः सिद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥ ३७ ॥
यदि स्यात् सिद्धकवचः शिवतुल्यो भवेद् ध्रुवम् ।
एषा तु गुटिका पश्चात् स्वर्णसम्पुटसंगता ॥ ३८ ॥
धारणीया साधकेन तत्र यद्यत् फलं लभेत् ।
शिवस्थिता यशोदात्री विद्यादात्री ललाटगा ॥ ३९ ॥
कण्ठस्थाखिलसौभाग्यसुखमङ्गलदायिनी ।
पुत्रप्रदा हृदिस्था च रोगहा चोदरस्थिता ॥ ४० ॥
नाभौ स्तम्भनकर्त्रीयं भुजस्था सर्वसिद्धिदा ।
इत्थं कवचमाहात्म्यं वक्तुं नालं यथोचितम् ।
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥ ४१ ॥

इत्यन्नदाकल्पे अन्नपूर्णास्तवकवचादिविवरणं नाम षोडशं पटलम् ।

भोजपत्र पर देवता का षट्कोण यन्त्र बनाकर उसमें बीजयुक्त देवता तथा साधक का नाम लिखे। अष्टदलों में दो-दो करके १६ स्वरवर्ण तथा बहिस्थ भूपुर में मातृका वर्ण से पुटित चारों ओर इस कवच को अंकित करे। तदनन्तर रक्तवस्त्र से वेष्टित करके रक्तसूत्र से उसे लपेटे। रक्तवर्ण लाख को गर्म करके उसके चारों ओर लगाकर गुटिका बनाये।

इसके अनन्तर प्राणप्रतिष्ठा करे। योनिगर्भ के अन्तराल में (योनि के भीतर) इसे स्थापन करके उस स्त्री में अन्नदा देवी की भावना करके अन्नदा का पूजन करने के उपरान्त १०८ जप करे। अन्त में यह कवच पढ़कर सिद्धि प्राप्त करे। यदि कवच सिद्ध हो जाता है तब वह साधक निश्चय ही शिव के समान है। यह गुटिका सोने के ताबीज में भरकर धारण करे। शिर में धारण करने से देवी वशीभूत हो जाती है। ललाट पर धारण करने से वे विद्या देती है। कण्ठ में धारण करने से निखिल सुख एवं मंगल देती हैं। हृदय पर धारण करने पर देवी पुत्रदात्री, उदर पर धारण करने से देवी रोग नाशिनी, नाभि पर धारण करने से देवी स्तम्भन कारिणी, भुजा पर धारण करने से देवी समस्त सिद्धिदात्री हो जाती हैं। करोड़ों मुख तथा करोड़ों जिह्वा से भी इस कवच का पूर्ण माहात्म्य नहीं कहा जा सकता ॥ ३२–४१ ॥

सोलहवाँ पटल समाप्त।

सप्तदशं पटलम्

अथ षट्कर्माणां सार्वकालिकत्वम्

षट्कर्माणां सार्वकालिकत्वमाह स्मृतौ मनुः ।
नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथा तथा ।
स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ।
तस्मात् स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन् द्विजः ॥ १ ॥

षट्कर्म सभी काल में किया जा सकता है। इस विषय में स्मृति में कहा गया है कि नैमित्तिक कार्य सभी काल में किया जा सकता है। इसमें किसी काल विचार की आवश्यकता नहीं है। मनु का कथन है कि अपने वीर्य तथा राजवीर्य से भी अपना वीर्य प्रधान होता है अतः अपने वीर्य (शक्ति) द्वारा शत्रुगण को निगृहीत करे ॥ १ ॥

अथ षट्कर्मणां लक्षणम्

शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोऽथाच्चाटने तथा ।
मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः ॥ २ ॥

मनीषियों द्वारा शान्तिकर्म, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण को षट्कर्म कहा गया है ॥ २ ॥

रोगकृत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता ।
वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्वमुदीरितम् ॥ ३ ॥

शान्ति एवं वश्य कर्म— जिस कर्म से रोग, कृत्या, ग्रह आदि का दोष शान्त होता है उसे शान्ति कर्म और जिससे प्राणीगण वशीभूत होते हैं, उसे वशीकरण कहा जाता है ॥ ३ ॥

प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं समुदाहृतम् ।
स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम् ॥ ४ ॥

स्तम्भन एवं विद्वेषण— जिस प्रक्रिया से समस्त प्राणियों की प्रवृत्ति का रोध होता है, उसे स्तम्भन कहते हैं और जिससे प्रणयी व्यक्तियों का प्रणय टूट जाता है, अर्थात् दोनों में द्वेष उत्पन्न होता है, वह है विद्वेषण ॥ ४ ॥

उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परिकीर्त्तितम् ।
प्राणिनां प्राणहरणं मारणं समुदाहृतम् ।
स्वदेवतादिक्कालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ।
स्निग्धानां परस्परमित्रभावापन्नानाम् ॥ ५ ॥

उच्चाटन एवं मारण—जिस कर्म से व्यक्ति को उसके स्थान से हटाया जाता है वह उच्चाटन है। जिससे प्राणिवर्ग का मारण, वध हो वह है मारण। इन सब कार्य में देवता, दिशा तथा कालादि का ज्ञान करके तब षट्कर्म करे। इससे सफलता मिलती है ॥ ५ ॥

अथ षट्कर्माणां देवताः

रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली यथाक्रमम्।
षट्कर्मदेवताः प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत्।
कालीति भद्रकाली ॥ ६ ॥

षट्कर्म के देवता कहे जा रहे हैं। शान्ति के देवता रति, वशीकरण के देवता वाणी, स्तम्भन कार्य के देवता रमा, विद्वेषण के ज्येष्ठा, उच्चाटन के दुर्गा तथा मारण के काली इन-इन कर्मों में ऊपर लिखे देवताओं का पूजन करे ॥ ६ ॥

अथ षट्कर्माणां दिङ्नियमः

ईशचन्द्रेन्द्रनिर्ऋतिर्वाय्वग्नीनां दिशो मताः।
क्रमेण षट्सु कर्मेषु भवन्ति दिशः प्रशस्ताः ॥ ७ ॥

षट्कर्म का दिक् नियम इस प्रकार है। इन्हें नियत दिशा में ही करे—

शान्तिकर्म = ईशान	स्तम्भन = पूर्व	उच्चाटन = वायुकोण
वशीकरण = उत्तर	विद्वेषण = नैर्ऋत	मारण = अग्निकोण ॥ ७ ॥

अथ षट्कर्माणां ऋतुकालादिनिर्णयः

सूर्योदयात् समारभ्य घटिकादशकं क्रमात्।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने।
वसन्तग्रीष्मवर्षाश्च शरद्धेमन्तशैशिराः।
घटिका अत्र दण्डरूपा ॥ ८ ॥

सूर्योदय से प्रारम्भ करके दस-दस दण्ड (घड़ी) पर्यन्त दिन एवं रात्रि में वसन्तादि ऋतु को जाने। सूर्योदय से प्रथम दश दण्ड तक वसन्त, उसके बाद दस दण्ड तक ग्रीष्म, उसके अनन्तर दश दण्ड तक वर्षा, उसके पश्चात् दश दण्ड तक शरत्, उसके पश्चात् दस दण्ड तक हेमन्त और अन्तिम दस दण्ड तक शरत् ऋतु समझो ॥ ८ ॥

प्रकारान्तरम्

वसन्तश्चैव पूर्वाह्णे ग्रीष्मे मध्याह्न उच्यते।
वर्षा ज्ञेयाऽपराह्णे तु प्रदोषे शिशिरः स्मृतः।

अर्द्धरात्रौ शरत्कालं उषा हेमन्त उच्यते।
अन्ये च ऋतवः सर्वे सायाह्नादौ प्रकीर्त्तिताः ॥ ९ ॥

प्रकारान्तर से भी दिवा रात्रि में ऋतुओं का वर्णन किया जा रहा है। दिवस के प्रथम भाग में वसन्त ऋतु, मध्याह्न में ग्रीष्म, अपराह्न में वर्षा, प्रदोष काल में शिशिर, अर्द्धरात्रि में शरद एवं उषाकाल में हेमन्त ऋतु होता है। इस प्रकार से कब किस ऋतु का उदय है, यह समझकर तदनुरूप कर्म करे ॥ ९ ॥

हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि।
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो ग्रीष्मे विद्वेष ईरितः।
प्रावृडुच्चाटने ज्ञेयो शरन्मारणकर्मणि ॥ १० ॥

हेमन्त में शान्तिकर्म, वसन्त में वशीकरण, शिशिर में स्तम्भन, ग्रीष्म में विद्वेषण, वर्षा में उच्चाटन तथा शरद् में मारण कर्म करे ॥ १० ॥

अथ षट्कर्मणां तिथिवारनियममाह

प्रयोक्तव्यानि विधिना तच्च सम्प्रोच्यतेऽधुना।
द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा।
बुधेज्यकाव्यसोमाश्च शान्तिकर्मणि कीर्त्तिताः।
गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी।
नवमी पौष्टिके शस्ता चाष्टमी दशमी तथा।
पुष्टिर्धनजनादीनां वर्द्धनं परिकीर्तितम् ॥ ११-१२ ॥

इस प्रकार षट्कर्म का तिथिवार निर्णय कहा गया—द्वितीया, तृतीया, पंचमी तथा सप्तमी। बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा सोम को (जब उक्त तिथियाँ इन वारों में पड़ें) शान्तिकर्म प्रशस्त है। बृहस्पति या सोमवार युक्त षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, नवमी, अष्टमी या दशमी को पुष्टि कर्म करे। जिस कर्म से धनधान्य बढ़ता है उसे पुष्टिकर्म कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रदिने तथा।
आकर्षणे त्वमावस्या नवमी प्रतिपत्तथा।
पौर्णमासी मन्दभानुयुक्ता विद्वेषकर्मणि।
षष्ठी चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दवारकाः।
उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषेषु विशेषतः ॥ १३-१४ ॥

दशमी, एकादशी, अमावस्या, नवमी अथवा प्रतिपद को एवं रवि या शुक्रवार को आकर्षण कर्म करे। विद्वेषण कार्य हेतु, शनि या रविवार युक्त पूर्णिमा तिथि उत्तम है। षष्ठी, चतुर्दशी एवं अष्टमी तथा शनिवार

को उच्चाटन कार्य करे। विशेषतः प्रदोष समय में उच्चाटन कार्य करे॥ १३–१४॥

चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावस्या तथैव च।
मन्दारार्कदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि।
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी तथा।
पौर्णमासी च विज्ञेया तिथिस्तम्भनकर्मणि॥ १५–१६॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी किं वा अमावस्या एवं शनि, मंगल अथवा रवि को मारण कर्म करे। बुध या सोमवार तथा पंचमी, नवमी, पूर्णिमा को स्तम्भन कार्य करे॥ १५–१६॥

शुभग्रहोदये कुर्यादशुभान्यशुभोदये।
रौद्रकर्माणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम्॥ १७॥

शुभग्रहोदय में शान्ति पुष्टि आदि शुभ कार्य तथा अशुभ ग्रहों के उदय काल में मारणादि अशुभ कार्य करे। विद्वेषण तथा उच्चाटनादि क्रूर कार्य को रविवार को पड़ने वाली रिक्ता तिथि में करे तथा मृत्यु योग पड़ने पर मारणादि कार्य करे॥ १७॥

अथ षट्कर्मणां नक्षत्रनियममाह

स्तम्भनं मोहनञ्चैव वशीकरणमुत्तमम्।
माहेन्द्रे वारुणे चैव कर्त्तव्यमिह सिद्धिदम्।
ज्येष्ठा चैवोत्तराषाढा चानुराधा च रोहिणी।
माहेन्द्रमण्डलं ह्येतत् सर्वकर्मप्रसिद्धिदम्।
स्यादुत्तरभाद्रपदा मूलं शतभिषा तथा।
पूर्वाभाद्रपदाश्लेषा ज्ञेया वारुणमध्यगाः।
पूर्वाषाढा तु तत्कर्मसिद्धिदा शम्भुना स्मृता॥ १८–२०॥

स्तम्भन मोहन तथा वशीकरण कार्य को माहेन्द्र तथा वारुण मण्डल मध्यगत नक्षत्र में करे। ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा तथा रोहिणी नक्षत्र ही माहेन्द्र मण्डल में स्थित हैं। उत्तराभाद्रपदा, मूल, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा एवं आश्लेषा को वारुण नक्षत्र कहा गया है। इन नक्षत्रों में कार्य करने से सफलता मिलती है और पूर्वाषाढ़ा में उक्त कार्य करने से सिद्धि प्राप्त होती है, वह महादेव का कथन है॥ १८–२०॥

विद्वेषोच्चाटनं वह्निवायुयोगे च कारयेत्।
स्वाती हस्ता मृगशिरा चित्रा चोत्तरफाल्गुनी।
पुष्यं पुनर्वसुर्वह्निमण्डलस्थाः प्रकीर्त्तिताः।

अश्विनी भरणी आर्द्रा धनिष्ठा श्रवणो मघा ।
विशाखा कृत्तिका पूर्वफाल्गुनी रेवती तथा ।
वायुमण्डलमध्यस्थास्तत्तत्कर्मप्रसिद्धिदाः ॥ २१–२२ ॥

विद्वेषण तथा उच्चाटन कर्म को वह्निमण्डलस्थ तथा वायुमण्डलस्थ नक्षत्रों में करना चाहिए। स्वाती, हस्त, मृगशिरा, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, पुष्य, पुनर्वसु को वह्निमण्डलस्थ कहते हैं। अश्विनी, भरणी, आर्द्रा, धनिष्ठा, श्रवण, मघा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी तथा रेवती ही वायुमण्डलस्थ नक्षत्र हैं। जिन कार्यों को जिन नक्षत्रों में करने को कहा गया, उन्हें उन्हीं नक्षत्रों में करना चाहिए ॥ २१–२२ ॥

कालविशेषश्च

वश्यं पूर्वेऽह्नि मध्याह्ने विद्वेषोच्चाटनं तथा ।
शान्तिपुष्टी दिनस्यान्ते सन्ध्याकाले च मारणम् ॥ २३ ॥

दिन के पूर्वभाग में वशीकरण, मध्य में विद्वेषण तथा उच्चाटन, अन्त में शान्ति पुष्टि कर्म और सन्ध्या को मारण कर्म करना उचित है ॥ २३ ॥

अथ षट्कर्माणां लग्ननियममाह

कुर्याच्च स्तम्भनं कर्म हर्यक्षे वृश्चिकोदये ।
द्वेषोच्चाटादिकं कर्म कुलीरे वा तुलोदये ।
मेषकन्याधनुर्मीने वश्यशान्तिकपौष्टिकम् ।
मारणोच्चाटने चासौ रिपुभेदविनिग्रहे ॥ २४ ॥

अब षट्कर्म के लिए विहित लग्नों को कहते हैं। सिंह या वृश्चिक लग्नों में स्तम्भन, कर्क या तुला में विद्वेषण एवं उच्चाटन, मेष-कन्या-धनु अथवा मीन में वशीकरण, शान्ति तथा पुष्टिकर्म करे और मारण उच्चाटनादि कार्य मीन लग्न में प्रारम्भ करे ॥ २४ ॥

अथ भूतोदये षट्कर्मनियमो यथा

जलं शान्तिविधौ शस्तं वश्ये वह्निरुदीरितः ।
स्तम्भने पृथिवी शस्ता विद्वेषे व्योम कीर्त्तितम् ।
उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूम्यग्निर्मारणे मतः ।
तत्तद्भूतोदये सम्यक् तत्तन्मण्डलसंयुतम् ।
तत्तत् कर्म विधातव्यं मन्त्रिणा निश्चितात्मना ॥ २५ ॥

अब षट्कर्म का तत्वोदय कहते हैं। जलतत्वोदय में शान्तिकर्म, वह्नितत्वोदय में वशीकरण, पृथ्वीतत्व के उदय में स्तम्भन, आकाशतत्वोदय में

विद्वेषण, वायुतत्व के उदय में उच्चाटन तथा पृथ्वीतत्व अथवा वह्नि-तत्वोदय में मारण करे। तत्वोदय को भली प्रकार देखकर उन-उन कर्मों को करे जिन्हें यहाँ बतलाया गया है। उस तत्व का मण्डल गठन करके उसमें वह कार्य करे ॥ २५ ॥

परचक्रभयादौ वा तीव्ररूपे महामये।
न कालनियमो गम्यः प्रयोगाणां कदाचन ॥ २६ ॥

शत्रुमय अथवा अन्य प्रकार का महामय होने पर उसके निवारणार्थ काल विचार नहीं किया जाता। जब जैसी विपत्ति आये, तब तदनुरूप प्रयोग करना चाहिए ॥ २६ ॥

अथ षट्कर्मदिङ्नियमस्तु तन्त्रान्तरे

इन्द्रे स्तम्भनमुच्चाटमग्नौ सर्वाभिचारकम्।
याम्ये रक्षसि विद्वेषः शान्तिर्वारुणवायवे।
कुलोत्सादं मरुद्भागे यक्षे कलहविग्रहौ।
कुर्वीत नोदितं कर्म यत्नात्तद् ब्रह्मणः पदे।
ब्रह्मणःपदे ऐशान्यामित्यर्थः ॥ २७ ॥

अन्य ग्रन्थों में षट्कर्म का दिशानियम प्रमाण अन्य प्रकार है। पूर्व दिशा में उच्चाटन तथा सब प्रकार का अभिचार अग्निकोण में करे। दक्षिण दिशा में तथा नैर्ऋत में विद्वेषण, पश्चिम तथा वायुकोण में शान्तिकर्म करे। वायु-कोण में कुलोच्छेद तथा नैर्ऋत्यकोण में कलह विग्रहादि कर्म उत्तम रूप से होता है। जिन सब कर्मों के सम्बन्ध में यहाँ नहीं कहा गया है, उन्हें ईशानकोण में करना चाहिए ॥ २७ ॥

अथ षट्कर्मणां वर्णभेदमाह

वश्ये चाकर्षणे क्षोभे रक्तवर्णं विचिन्तयेत्।
निर्विषीकरणे शान्तौ पुष्टौ चाप्यायने सितम्।
पीतं स्तम्भनकार्येषु धूम्रमुच्चाटने स्मृतम्।
उन्मादे शक्रगोपाभं कृष्णवर्णन्तु मारणे।
शक्रगोपो रक्तवर्णकीटविशेषः ॥ २८ ॥

वशीकरण, आकर्षण तथा क्षोभण कार्य में देवता का चिन्तन रक्तवर्ण रूप में करे। विष निवारण, शान्तिकरण तथा पुष्टिकार्य में श्वेतवर्ण, स्तंभन में पीतवर्ण, उच्चाटन में धूम्रवर्ण, उन्मादकरण में रक्तवर्ण तथा मारण में कृष्णवर्ण देवता के रूप का चिन्तन करे, शक्रगोप को बीरबहूटी कहते हैं ॥ २८ ॥

उत्थितं मारणे ध्यायेत् सुप्तमुच्चाटने प्रभुम् ।
उपविष्टं सुरेशानि ! सर्वत्रैव विचिन्तयेत् ॥ २९ ॥

इत्यन्नदाकल्पे सप्तदशं पटलम् ।

मारण कार्य में देवता का चिन्तन इस प्रकार करे कि वे उठे हुए हैं । इसी प्रकार उच्चाटन में देवता सुप्त हैं और अन्यान्य कार्य में बैठे हुए हैं, यह चिन्तन करे ॥ २९ ॥

सत्रहवाँ पटल समाप्त ।

अष्टादशं पटलम्

अथ षट्कर्मणां सात्त्विकादौ वर्णविशेषचिन्तनम्

आसीनं श्वेतरूपन्तु सात्विके समुदाहृतम्।
राजसे पीतवर्णं तु रक्तं श्याममुदाहृतम्।
यानमार्गस्थितं तूर्णं कृष्णं तामस उच्यते ॥ १ ॥

अब षट्कर्म में सात्विकादि कार्य विशेष के अनुसार वर्ण भावना कही जा रही है। सात्विक कार्य में बैठा हुआ श्वेतवर्ण, राजस कार्य में पीत, रक्त अथवा श्यामवर्ण तथा तामसकार्य में यानमार्ग स्थित एवं कृष्णवर्ण चिन्तन करे ॥ १ ॥

सात्विकं मोक्षकामानां राजसं राज्यमिच्छताम्।
तामसं शत्रुनाशार्थं सर्वव्याधिनिवारणम्।
सर्वोपद्रवनाशार्थं तामसन्तु विचिन्तयेत् ॥ २ ॥

मोक्ष की कामना करने वाला व्यक्ति सात्विक तथा राज्याभिलाषी व्यक्ति राजस कर्म करे। शत्रुनाशार्थं तथा सर्वरोग निवारणार्थं और सभी प्रकार के उपद्रवों की शान्ति के लिए तामस कार्य करना चाहिए ॥ २ ॥

अथ मन्त्राधिष्ठातृदेवतामाह

रुद्रारतार्क्ष्यगन्धर्वयक्षरक्षोऽहिकिन्नराः।
पिशाचभूतदैत्येन्द्रसिद्धाः किम्पुरुषासुराः।
सर्वेषामपि मन्त्राणां एते पञ्चदश स्मृताः।
केचिदष्टादशप्राहुः समग्राणां नृणां मताः ॥ ३ ॥

समस्त मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवता इस प्रकार से हैं। रुद्र, मंगल, गरुड़, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर, पिशाच, भूत, दैत्य, इन्द्र, सिद्ध, विद्याधर तथा असुर—ये १५ देवता सभी मन्त्रों के अधिष्ठाता हैं। किसी ग्रंथकार के मतानुसार १८ प्रकार के मन्त्र देवता कहे गये हैं ॥ ३ ॥

अथ मन्त्राणां वर्णसंख्याभेदेन संज्ञामाह

कर्त्तरी त्येकवर्णेन द्विवर्णाभ्यां शुचिस्मृता।
मुद्गरस्तु त्रिभिर्वर्णैश्चतुर्भिर्मुषलस्तथा।
क्रूरः शनिः पञ्चवर्णैः षड्भिर्वर्णैस्तु शृङ्खलः।
क्रकचः सप्तभिः शूलश्चाष्टाभिर्नवभिः पविः।
शक्तिश्च दशभिश्चैकादशभिः परशुः स्मृतः।

चक्रं द्वादशभिर्वर्णैः कुलिशः स्यात् त्रयोदशैः।
चतुर्दशैस्तु नाराचो भुषुण्डी स्यात् पञ्चदशः।
पद्मं षोडशभिर्वर्णैर्मन्त्रच्छेदे तु कर्त्तरी।
भेदे तु कथिता सूची भजने मुद्गरः स्मृतः।
मुषलं क्षोभणे बन्धे शृङ्खलः क्रकचच्छिदि।
घाते शूलं पविं स्तम्भे शक्ति बन्धे च कर्मणि।
विद्वेषे परशुश्चक्रं सर्वकर्मसु योजयेत्।
उत्सादे कुलिशः शस्तो नाराचः सैन्यभेदने।
भुषुण्डिर्मारणे पद्मं शान्तिपुष्टयादि कर्मणि।
चक्रन्तु रञ्जकं कर्म सर्वत्रैव प्रयोजयेत्।
क्वचिदेवं दर्शितन्तु वामाचारविरोधनम्।
सहस्राक्षरमन्त्रादेः प्रयोगो विधिदर्शनात्॥ ४॥

तदनन्तर मन्त्रों की वर्ण संख्यानुसार नाम कहते हैं—

१ अक्षर का मन्त्र	= कर्त्तरी	९ अक्षर का मन्त्र	= वज्र
२ ,, ,,	= शुचि	१० ,, ,,	= शक्ति
३ ,, ,,	= मुद्गर	११ ,, ,,	= परशु
४ ,, ,,	= मुषल	१२ ,, ,,	= चक्र
५ ,, ,,	= क्रूर	१३ ,, ,,	= कुलिश
६ ,, ,,	= शृंखल	१४ ,, ,,	= नाराच
७ ,, ,,	= क्रकच	१५ ,, ,,	= भुशुण्डि
८ ,, ,,	= शूल	१६ ,, ,,	= पद्म

अब यह कहा जायेगा कि किस कार्य में कौन-सा मन्त्र प्रशस्त है। मन्त्रच्छेद में कर्त्तरी मन्त्र, भेद कार्य में शुचि मन्त्र, भंजन में मुद्गर मन्त्र, क्षोभण में मुषल मन्त्र, बन्धन में शृंखल मन्त्र, छेदन में क्रकच मन्त्र, घातकर्म में शूल मन्त्र, स्तम्भन में वज्र मन्त्र, बन्धन में शक्तिमन्त्र, विद्वेषण में परशु मन्त्र, सर्व कार्य में चक्र मन्त्र, उच्चाटन करने में कुलिश मन्त्र, सैन्य भेदन में नाराच मन्त्र, मारण में भुशुण्डि मन्त्र तथा शान्ति पुष्टि आदि कर्म में पद्म मन्त्र प्रशस्त है। यह समस्त कर्म वामाचार विरोधी है। अर्थात् इन्हें दक्षिणाचार द्वारा करना चाहिए॥ ४॥

अथ कार्यविशेषे योजनपल्लवादिनिर्णयः

पञ्चाशद्वर्णरूपात्मा मातृका परमेश्वरी।
तत्रोत्पन्ना महाकृत्या त्रैलोक्यभयदायिनी।
यथा कामो जपः कार्यो मन्त्राणामपि मे शृणु॥ ५॥

कार्य विशेष में मन्त्र का योजन तथा पल्लवादि संज्ञा कही जा रही है। मातृका देवी ५० वर्ण रूपा हैं। इन वर्णों से उत्पन्न मन्त्र त्रिभुवन में भय निवारण करते हैं और मनुष्यगण जिस कामना को लेकर मन्त्र जप करते हैं, उन्हें पूर्ण करते हैं ॥ ५ ॥

मन्त्रादौ योजनं नाम्नः पल्लवः परिकीर्त्तितः।
मारणे: विश्वसंहारे ग्रहभूतनिवारणे।
उच्चाटने च विद्वेषे पल्लवः परिकीर्त्तितः।
मन्त्रान्ते नामसंस्थानं योगइत्यभिधीयते।
शान्तिके पौष्टिके वश्ये प्रायश्चित्ते विशोधने।
मोहने दीपने योगः प्रयुञ्जन्ति मनीषिणः।
स्तम्भनोच्चाटनच्छेदविद्वेषेषु च चोच्यते ॥ ६ ॥

मन्त्र २ प्रकार के होते हैं। पल्लव तथा योजना जिस मन्त्र के आदि में नाम युक्त रहता है, वह पल्लव है। मारण, संहार, ग्रह भूत निवारण, उच्चाटन तथा विद्वेषण कार्य में पल्लव मन्त्र प्रशस्त है। जिस मन्त्र के अन्त में नाम युक्त रहता है, वह योजन मन्त्र है। यह शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, प्रायश्चित्त तथा मोहन आदि कर्म में प्रयुक्त होता है। इसे स्तम्भन उच्चाटन तथा विद्वेषण में भी प्रशस्त माना गया है ॥ ६ ॥

नाम आद्यन्त मध्येषु मन्त्रः स्याद्रोध उच्यते।
मन्त्राभिमुख्यकरणे सर्वव्याधिनिवारणे।
ज्वरग्रहविषाद्यार्तिशान्तिकेषु च चोच्यते।
सम्मोहने स एवाथ मन्त्राणामक्षराणि च ॥ ७ ॥

नाम के आदि मध्य अन्त में मन्त्र के होने पर उसे बोध मन्त्र कहा जाता है। इससे अभिमुखीकरण, सर्वरोग निवारण तथा ज्वर, ग्रह, विष पीड़ा निवारण रूपी शान्ति कार्य होते हैं। सम्मोहन में भी इसका प्रयोग होता है ॥ ७ ॥

एकैकान्तरितं यत्तु प्रथमं परिकीर्तितम्।
तच्छान्तिके विधातव्यं नामाद्यश्च यथा मनुः।
तत् सम्पुटं भवेत्तत्तु कीलेन परिभाषितम्।
स्तम्भे मृत्युञ्जये इच्छेद्रक्षादिषु च सम्पुटम्।
नाम्न आदौ अनुलोमेन अन्ते विलोमक्रमेण इति भावः ॥८॥

जिसमें नाम के एक-एक अक्षर के पश्चात् मन्त्र रहता है उसे प्रथम मन्त्र कहा गया है। यह शान्ति कार्य में विहित है और जहाँ नाम के आदि में

अनुलोम और अन्त में विलोम मन्त्र रहे, उसे सम्पुट मन्त्र कहते है। यह स्तम्भन, मृत्यु निवारण तथा रक्षादि कार्य में प्रयुक्त होता है ॥ ८ ॥

मन्त्रमादौ वदेत् सर्वं साध्यसंज्ञामनन्तरम् ।
विपरीतं पुनश्चान्ते सम्पुटं तत् स्मृतं बुधैः ॥ ९ ॥

इति वचनानुसारात् साध्यनामादौ अनुलोमेन तत्पश्चात् विलोमेन मन्त्राक्षराणि लिखितव्यानि इत्यर्थः ।

पुनः प्रकारान्तर से सम्पुटित कहा जाता है। पहले मन्त्र के सभी अक्षर का अनुलोम उच्चारण करके तदनन्तर साध्य नाम का उल्लेख करके अन्त में मन्त्र के सभी अक्षरों को विलोम क्रम से पढ़े ॥ ९ ॥

मन्त्रार्णद्वन्द्वमेकैकं साध्यनामाक्षरं क्रमात् ।
कथ्यते सविदर्भस्तु वश्याकर्षणपौष्टिके ॥ १० ॥

मन्त्र के दो-दो अक्षर तथा साध्य नाम के दो-दो अक्षर का क्रमशः पाठ करे। इसे सविदर्भ मन्त्र कहते हैं। यह वशीकरण, आकर्षण तथा पुष्टिकर्म में प्रशस्त है ॥ १० ॥

अथ कर्मविशेषे हुंफट् वषडादीनि

बन्धनोच्चाटने द्वेषे सङ्कीर्णे हुं पदं जपेत् ।
फट्कारं छेदने हुंफट् रिष्टग्रहनिवारणे ।
पुष्टौ चाप्यायने बौषट् बोधने मलिनीकृतौ ।
अग्निकार्ये जपेत् स्वाहां नमः सर्वत्र चार्चने ॥ ११ ॥

इस प्रकार से किसी-किसी कार्य में हुं, फट्, वषट् तथा नमः शब्द का प्रयोग किया जाता है। बन्धन, उच्चाटन तथा विद्वेषण में 'हुं' का मन्त्र में योजन करे। छेदन में फट् शब्द मन्त्र के अन्त में लगाना चाहिए। ग्रहारिष्ट निवारण में हुं फट् को, पुष्टि कार्य तथा शान्तिकरण में वौषट् को, होमादि में स्वाहा को मन्त्र के अन्त में लगाये। सभी प्रकार के पूजन में नमः प्रयोग करे ॥ ११ ॥

शान्तिपुष्टिवशद्वेषाकृष्ट्युच्चाटनमारणे ।
स्वाहा स्वधा वषट् हुं च वौषट् फट् योजयेत् क्रमात् ।
वश्याकर्षणसन्तापज्वरे स्वाहा प्रकीर्तयेत् ।
क्रोधोपशमने शान्तौ प्रीतौ योज्यं नमो बुधैः ।
वौषट् सम्मोहनोद्दीपपुष्टिमृत्युञ्जयेषु च ।
हुंकारं प्रीतिनाशे च छेदने मारणे तथा ।

उच्चाटने च विद्वेषे वौषट् चान्धीकृतौ वषट्।
मन्त्रोद्दीपनकार्येषु लाभालाभे वषट् स्मृतम् ।। १२ ।।

शान्ति कर्म तथा पुष्टि कर्म में स्वाहा का प्रयोग करे। वशीकरण में स्वधा, विद्वेषण में वषट्, आकर्षण में हुं, उच्चाटन में फट् मन्त्र से पूजा करे और फट् से वशीकरण, आकर्षण तथा ज्वर सन्ताप निवारण कार्य में स्वाहा का प्रयोग करे। क्रोध शान्ति, शान्ति कर्म तथा प्रीतिवर्धक कार्यों में नमः का प्रयोग बुद्धिमान् लोग करते हैं। सम्मोहन, उद्दीपन, पुष्टि कार्य तथा मृत्यु निवारण में वौषट् का प्रयोग होता है। प्रीतिनाश करने में, छेदन कृत्य में तथा मारण में हुं का प्रयोग किया जाता है। उच्चाटन तथा विद्वेषण में वौषट्, अन्धीकरण में वषट् तथा मन्त्र चैतन्य एवं मन्त्रदीपनार्थ वषट् का प्रयोग करे ।। १२ ।।

अथ स्त्रीपुंनपुंसकमन्त्रनियममाह

स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिधाः स्युर्मन्त्रजातयः।
स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता नमोऽन्ताश्च नपुंसकाः।
हुंफट् पुमांस इत्युक्ता वश्यशान्ताभिचारके।
क्षुद्रक्रियाद्युपध्वंसे स्त्रियोऽनात्र नपुंसकाः ।। १३ ।।

मन्त्र की स्त्री-पुरुष तथा नपुंसक संज्ञा का वर्णन किया जाता है। जिन मन्त्रों के अन्त में स्वाहा लगा हो, वे स्त्री मन्त्र हैं। जिन मन्त्रों के अन्त में नमः शब्द लगता है, वे नपुंसक मन्त्र होते हैं। जिन मन्त्रों के अन्त में हुं फट् शब्द लगा है, वे पुरुष मन्त्र हैं। वशीकरण, शान्तिकर्म तथा अभिचार में पुरुष मन्त्र, क्षुद्र क्रिया, विनाश में स्त्री मन्त्र तथा इसके अतिरिक्त कार्यों में नपुंसक मन्त्र विहित हैं ।। १३ ।।

तारान्त्याग्निविषप्राये मन्त्र आग्नेय उच्यते।
सौम्याश्च मनवः प्रोक्ता भूयिष्ठेन्दुमृताक्षराः।
आग्नेयमन्त्राः सौम्याः स्युः प्रायशोऽन्ते नमोऽन्विताः।
मन्त्रः शान्तोऽपि रौद्रत्वं हुंफट् पल्लवितो यदि।
सुप्तः प्रबुध्यमानोऽपि मन्त्रः सिद्धिं न गच्छति।
स्वापकालो वामबाहो जागरो दक्षिणावहः।
स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपो न च फलप्रदः।
आग्नेयाः सम्प्रबुध्यन्ते प्राणे चरति दक्षिणे।
वामे चरति सौम्याश्च प्रबुद्धो मन्त्रिणां सदा।
नाड़िद्वयगते प्राणे सर्वे बोधं प्रयान्ति च।
प्रयच्छन्ति फलं सर्वे प्रबुद्धा मन्त्रिणां सदा ।। १४ ।।

जिनके अन्त में 'ॐ' लगा है, वह आग्नेय मन्त्र कहे जाते हैं। जिन मन्त्रों में इन्दु तथा अमृताक्षर है उसे सौम्य मन्त्र कहते हैं। जिस आग्नेय मन्त्र के अन्त में नमः लगा हो, वह भी सौम्य मन्त्र है। सौम्य मन्त्र हुं फट् से पल्लवित होने पर रौद्र मन्त्र हो जाता है। सुप्त मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होता। जब वाम नासिका से प्राणवायु बहता हो, तब निद्रावस्था रहती है। दक्षिण नासिका से प्राणवायु बहने पर वह जाग्रतावस्था है। उक्त निद्रावस्था में जपने पर मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होता। दक्षिण नासिका से जब प्राणवायु चल रहा हो तब आग्नेय मन्त्र प्रबुद्ध रहते हैं और वाम नासिका श्वासकाल में सौम्य मन्त्र प्रबुद्ध रहते हैं। जब दोनों नासिका से प्राणवायु बह रहा हो, तब सभी मन्त्र प्रबुद्ध रहते हैं। प्रबुद्ध मन्त्र का जप ही सिद्धिप्रद होता है ॥ १४ ॥

अथ आसनानि

आसनानि प्रवक्ष्यामि कर्मणां विहितान्यपि ।
पद्मासनं पौष्टिके तु शान्तिके स्वस्तिकासनम् ।
आकृष्टे पौष्टिके तद्वद्विद्वेषे कुक्कुटासनम् ।
अर्द्धस्वस्तिकमुच्चाटे ह्यर्द्धस्थापनपार्ष्णिकम् ।
मारणे स्तम्भने तद्वद्विकटं परिकीर्तितम् ।
वक्ष्ये भद्रासनं तेषां कथ्यते चाथ भावना ॥ १५ ॥

षट्कर्म में विहित आसन इस प्रकार हैं—पुष्टिकर्म में–पद्मासन, शान्तिकर्म में–स्वस्तिकासन, विद्वेषण, आकर्षण तथा पुष्टिकर्म में–कुक्कुटासन, उच्चाटन में–अर्द्धस्वस्तिकासन, मारण तथा स्तम्भन में–विकटासन तथा वशीकरण में–भद्रासन ॥ १५ ॥

अथ विकटकुक्कुटासनयोर्लक्षणम्

जानुजङ्घान्तरालेषु भुजयुग्मं प्रवेशयेत् ।
विकटासनमेतत् स्यादुपविश्योत्कटासने ।
कृत्वोत्कटासनञ्चैव समपादद्वयं ततः ।
वश्ये मेषासनं प्रोक्तं आकृष्टिर्व्याघ्रचर्मणि ।
उष्ट्रासनं तथोच्चाटे विद्वेषे तुरगासनम् ।
मारणे महिषं चर्म मोक्षे गजाजिनं भवेत् ।
अथवा कम्बलं रक्तं सर्वकर्मसु कारयेत् ॥ १६ ॥

विकट तथा कुक्कुट आसनों का वर्णन किया जाता है। जानु तथा जंघा के मध्य में दोनों हाथों का प्रवेश कराने से विकटासन बन जाता है। विकटासन की ही स्थिति से दोनों पैरों को बराबर करके जानुओं के मध्य में हस्तद्वय को प्रविष्ट कराने से कुक्कुटासन की स्थिति हो जाती है।

वशीकरण हेतु मेष चर्म का आसन, विद्वेषण हेतु घोड़े की खाल का आसन,
आकर्षण ,, व्याघ्रचर्म का आसन, मारणकार्य ,, महिषचर्म का आसन,
उच्चाटन ,, उष्ट्रचर्म का आसन, मोक्षसाधन ,, गज चर्म का आसन,
सर्वकार्य ,, रक्तवर्ण वाले अथवा कम्बलासन का प्रयोग करना चाहिए ।।१६।।

अथ षण्मुद्राः

षण्मुद्राः क्रमशो ज्ञेयाः पद्मपाशगदास्तु याः ।
मुषलाशनिखड्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु ।। १७ ।।

अब मुद्राविधि कहते हैं—पद्म, पाश, गदा, मुसल, वज्र, ये ६ मुद्राये हैं ।

शान्ति–कार्य–पद्ममुद्रा	विद्वेषण–मुसलमुद्रा
वशीकरण–पाशमुद्रा	उच्चाटन–वज्रमुद्रा
स्तम्भनकार्य–गदामुद्रा	मारण–खड्गमुद्रा

द्वारा करना चाहिए ।। १७ ।।

अथ देवध्यानमाह

शान्ति पौष्टिकवश्येषु सौन्दर्यातिशयान्विताः ।
सर्वाभरणसन्दीप्ताः प्राप्तकालमनोरथाः ।
ध्यातव्या देवताः सम्यक् सुप्रसन्नाननाम्बुजाः ।
आकर्षणेऽपि तद्वच्च बडिशैरिव मत्स्यकान् ।
मध्यमाकर्षणे द्वेषे भर्त्स्यमानजनैरिव ।
वध्यमानोजनैर्दण्डैस्ताडितस्तस्करो यथा ।
उलूको वा यथा रिष्टैर्मन्तव्योच्चाटने रिपुः ।
तत्किञ्चित् शवमारुह्य सन्दष्टौष्ठपुटः क्रुधा ।
कर्म कुर्यात्ततो मन्त्री यथा क्रूरेषु कर्मसु ।। १८ ।।

अब देव ध्यान का प्रकार कहते हैं । शान्तिकार्य, पुष्टिकार्य, वशीकरण तथा आकर्षण में अत्यन्त सुन्दरी, समस्त आभूषणयुक्ता, नवयौवना तथा प्रसन्नवदना देवता का ध्यान करे । जैसे नदी में मछली पकड़ने की बंशी में लगे खाद्य के प्रति मछली आकर्षित होती है, उसी प्रकार से अभिलषित व्यक्ति को आकर्षित किया जाता है । (इस प्रकार ध्यान करना चाहिए) विद्वेषण में भर्त्स्यमान व्यक्ति की तरह (जिसका विद्वेषण करना हो उसका भर्त्स्यमान व्यक्ति के रूप में मन में चिन्तन करे ।) यह भी सोचे कि जैसे दण्ड से चोर को पीटा जा रहा है, जिसका विद्वेषण करना है । उच्चाटन कार्य में यह चिन्तन करे कि जैसे उल्लू तथा कौये में पारस्परिक विद्वेष है वैसा ही साधक तथा शत्रु में है । अभिचार कार्य में किसी शव पर क्रोधित मुद्रा में बैठकर जप करे ।। १८ ।।

अथ रक्षार्थम्

ग्रामे च निर्जने देशे विदध्यादभिचारकम् ।
यत्राभिचारहोमन्तु कुर्याच्च भुवि साधकः ।
तत्राभितो भटै रक्षां कारयेदात्मसिद्धये ।
न चेज्जनान् क्षितिपतिश्चारैर्ज्ञात्वा हनिष्यति ।। १९ ।।

ग्राम के किसी निर्जन स्थल पर अभिचार कार्य करे। जहाँ इसके लिए होम किया जाये उसे चारों ओर से अपने आदमियों द्वारा घिरा रक्खे क्योंकि विपक्षी राजा (या व्यक्ति) अपने प्रति अभिचार कर्म के होते रहने की सूचना पा जाने पर इस कार्य में विघ्न उत्पन्न कर सकता है ।। १९ ।।

अथ कुण्डम्

विद्वेषे चाभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते ।
द्विमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रन्तु सर्वतः ।। २० ।।
उच्चाटन्तु नैर्ऋत्यां शत्रुपक्षस्य कारयेत् ।
उत्सादनन्तु वायव्यां देवानामपि कारयेत् ।। २१ ।।

अब कुण्ड विधि कहते हैं। विद्वेष कार्य में त्रिकोण कुण्ड बनाकर कार्य करे। इस त्रिकोणकुण्ड में दो मेखलाएँ रहती हैं और इसे एक हाथ नाप का बनाना चाहिए। इसके कुण्ड का मुख नैर्ऋत्यकोण में हो। शत्रुपक्ष के उच्चाटनार्थ नैर्ऋत्यकोण में तथा देवोच्चाटनार्थं वायुकोण में कुण्ड का मुख होना चाहिए ।। २०–२१ ।।

शत्रूणां तापने शस्तं योन्याख्यमग्निकोणगम् ।
अर्द्धचन्द्रन्तु याम्यायां शत्रूणां मारणे स्थितम् ।
याम्यायां मण्डपस्य ।
त्रिकोणं नैर्ऋते कुण्डं रिपूणां व्याधिवर्द्धनम् ।
दाहायाग्नौ च विद्वेषे कुण्डं पूर्णेन्दुसन्निभम् ।
चतुरस्रं वा प्रकर्त्तव्यं द्वेषादौ तु विचक्षणैः ।
कुण्डं सुलक्षणं कृत्वा तत्र कर्माणि साधयेत् ।
चतुरस्रे भवेद्वश्यमाकर्षणं त्रिकोणके ।
कर्षणस्तम्भने देवि विद्वेषश्च त्रिकोणके ।
अथैवोच्चाटनं प्रोक्तं षट्कोणे मारणं स्मृतम् ।। २२ ।।

शत्रुतापन कार्य में योनि के आकार का कुण्ड बनाना चाहिए। इसका निर्माण मण्डप के अग्निकोण में हो। शत्रुमारणार्थ मण्डप के दक्षिण में अर्द्धचन्द्र कुण्ड बनाये। शत्रु के रोगवर्धनार्थ मण्डप के नैर्ऋत्यकोण में त्रिकोण कुण्ड में

कार्य करना होगा। विद्वेषण के लिए कुण्ड को पूर्णचन्द्र की आकृति का बनाये अथवा चतुरस्र कुण्ड बनाये। कुण्ड को सुलक्षण युक्त (सुडौल) बनाये। वशीकरण हेतु चतुरस्र कुण्ड, आकर्षण हेतु त्रिकोण कुण्ड तथा उच्चाटन एवं मारण कार्य की साधना के लिए षट्कोण कुण्ड बनाना चाहिए॥ २२॥

उदीच्यां पौष्टिके कुण्डं वारुण्यां शान्तिकादिषु।
उच्चाटे चानिले कुण्डं याम्ये च मारणं भवेत्।
मानहीनादिकं दोषं नास्ति कुण्डेऽभिचारके॥ २३॥
उदीच्यां मण्डपस्य ग्रामस्य वा।
मानं हस्तादिमानम्।

पुष्टिकार्य में मण्डप की उत्तरदिशा में, शान्ति कार्य हेतु मण्डप के पश्चिम में, उच्चाटनार्थ वायुकोण में तथा मारण कार्य के लिए मण्डप के दक्षिण में कुण्ड बनाये। अभिचार कार्य में यदि कुण्ड में न्यूनाधिक दोष हो भी तो भी उसे माना नहीं जाता। आगम के विद्वान् विवाहादि कार्य को शुभ तथा मारणादि को क्रूर कर्म कहते हैं। लम्बाई आदि के मान के लिए हाथ का उपयोग करना चाहिए॥ २३॥

ततो राज्ञातिविद्वांसमथर्वश्रुतिपारगम्।
बहुभिर्द्रविणैर्वस्त्रैर्नानारत्नैर्विभूषणैः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद्विधिना वृणुयाद्द्विजम्।
वृतोऽप्युत्साहसंयुक्तः सर्वरक्षापरायणः।
यत्नतो मारणं कर्म कुर्याद्राज्ञो हितेच्छया।
वित्तशाठ्यं परित्यज्य सर्वकर्माणि कारयेत्।
वित्तशाठ्यं निहन्त्याशु पुत्रमायुर्यशोधनम्।
देशरक्षणधर्मेण न स्वयं पापभाग् भवेत्।
तेजोनाशो भवेदादौ बलनाशस्ततो भवेत्।
सपत्नस्य ततोनाशस्तिस्रश्चावृत्तयस्ततः।
त्रिरावृत्तौ फलालाभे त्रिरावृत्तं पुनश्चरेत्॥ २४॥

तदनन्तर राजा अथर्ववेदवेत्ता ब्राह्मण को अनेक धन, वस्त्र तथा नानाविध रत्न भूषणादि के द्वारा सन्तुष्ट करके विधान क्रम से उनका वरण करे (कार्य में नियुक्त करे)। ब्राह्मण व्रती होकर उत्साहसम्पन्न स्थिति में सब प्रकार की आत्मरक्षा का विधान करके राजा के हितार्थ यत्नपूर्वक मारण कर्म करे। अभिचार कार्य में धन की शठता (लालच) न करे। यदि अर्थव्यय की शठता के कारण किसी प्रकार से अभिचार कृत्य का अंग-भंग हो जाता है, तब उस ब्राह्मण के पुत्र, आयु, धन तथा यश का नाश हो जाता है। देश की

रक्षा के लिए अभिचार कार्य करने से वह ब्राह्मण पाप का भागी कदापि नहीं होता। मारण प्रयोग से पहले शत्रु का तेज नष्ट होता है, तदनन्तर बल का नाश होता है। अन्त में शत्रु का विनाश हो जाता है। अभिचार कृत्य को तीन बार करने से उपयुक्त फल होते देखा गया है। यदि प्रथमतः तीन बार के प्रयोग से कार्यसिद्धि न हो, ऐसी स्थिति में पुनः तीन बार इसका प्रयोग करना चाहिए ॥ २४ ॥

वश्यात् स्तम्भनमुत्कृष्टं स्तम्भनान्मोहनं महत्।
मोहनाद् द्वेषणं श्रेष्ठं द्वेषादुच्चाटनं वरम्।
उच्चाटनादपि महान्मारणं सर्वतो महत्।
मारणादधिकं कर्म न भूतं न भविष्यति।
तत्रैव दक्षिणे चित्तं कृत्वा मारणमारभेत्।
शान्तिपुष्टी दिनस्यान्ते सन्ध्याकाले तु मारणम् ॥ २५ ॥

वशीकरण की तुलना में स्तम्भन प्रधान है, स्तम्भन से मोहन अधिक प्रधान है, उसकी अपेक्षा द्वेषणकृत्य श्रेष्ठ है, द्वेषण से उच्चाटन की श्रेष्ठता है। परन्तु मारणकर्म सब से महान् है। उससे महान् कर्म तो न भूत में है, न भविष्य में। इससे महत्तर कर्म दृष्टिगोचर ही नहीं होता। दिन के अन्त में शान्ति एवं पुष्टिकर्म करे और सन्ध्याकाल में मारणकर्म करना चाहिए ॥२५॥

अथ कुण्डस्थापनम् (आङ्गिरसे)

शान्तिके स्वर्णकुम्भश्च नवरत्नैर्विभूषितम्।
तदभावे रौप्यकुम्भं ताम्रं वापि सुलक्षणम्।
अभिचारे लौहकुम्भं स्थापयेत् सुसमाहितः।
उत्सादे काचकुम्भश्च मोहने रौप्यकुम्भकम्।
उच्चाटने च मृत्कुम्भं कालमण्डलसंस्थितम्।
सर्वकर्माणि वा कुर्यात् कुम्भे ताम्रमये तथा ॥ २६ ॥

तदनन्तर षट्कर्म का कुम्भकर्म कहा जाता है। आंगिरस ऋषि द्वारा कथित ग्रन्थ में अंकित है कि शान्ति कार्य में नानारत्नों से सुशोभित कुम्भ का अथवा उसके अभाव में चाँदी के कुम्भ का अथवा उसका भी अभाव होने पर सुन्दर लक्षणों से युक्त ताम्रकुम्भ की स्थापना करनी चाहिए। अभिचार हेतु लोहे का कुम्भ, उत्सादन कार्य में काचकुम्भ, मोहनकार्य में पीतल का कुम्भ तथा उच्चाटन में मिट्टी का कुम्भ विहित बतलाया गया है। ताँबे के कुम्भ का प्रयोग प्रत्येक कार्य में किया जा सकता है ॥ २६ ॥

तत्तत् कुम्भञ्च संस्थाप्य रुद्रं देवीञ्च पूजयेत्।
उपचारक्रमेणैव देवं ध्यायेद्यथाविधि।

शूलहस्तं महारौद्रं सर्ववैरिनिषूदनम् ।
पूर्णचन्द्रसमाभासं रुद्रं वृषभवाहनम् ।
अथवान्यप्रकारेण ध्यानं कुर्यात् समाहितः ।
काश्मीरस्फटिकप्रभं त्रिनयनं पञ्चाननं शूलिनं
खट्वाङ्गासिवरप्रसादडमरुं चक्राब्जबीजाभयम् ।
बिभ्राणं दशदोर्भिरक्षजटिलं वीरासने संस्थितं
गौरीश्रीसहितं सदैवमखिलं ध्यायेच्छिवं चर्मिणम् ॥
रुद्रमन्त्रेण कुर्याच्च उपचारान् पृथग्विधान् ।
भद्रकालीञ्च सम्पूज्य नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ।
पट्टवस्त्रैरलङ्कारैर्बलिदानैः पृथग्विधैः ।
यत्र न स्यादुपयोऽन्यः शत्रोर्भयनिवृत्तये ।
तदानन्यगतित्वेन मारणादीनि कारयेत् ॥ २७ ॥

पहले कहे गये वचनों के अनुसार यथोक्त कुम्भ स्थापित करके विविध उपचारों द्वारा रुद्र तथा देवी भद्रकाली का पूजन करना चाहिए। रुद्रध्यान इस प्रकार से है—शूलहस्त, महाभयंकर रूप वाले, सर्वशत्रु विनाशक, पूर्ण चन्द्र के समान आभायुक्त, वृषभवाहन रुद्रदेव के स्वरूप का चिन्तन करके पूजा करे।

अन्य प्रकार का ध्यान—काश्मीर (केशर) तथा स्फटिक के समान देह-कान्ति वाले, त्रिनयन, पाँच मुखों से शोभित, दस हाथों वाले जिनमें क्रमशः शूल, खट्वांग, खड्ग, वरमुद्रा, प्रसादमुद्रा, डमरू, चक्र, कमल, बीज तथा अभय-मुद्रा सुशोभित हैं तथा जो मस्तक पर जटा धारण किये हुए हैं और वीरासन में बैठे हैं, जिनके दोनों ओर गौरी तथा लक्ष्मी विराजमान हैं, इस प्रकार का ध्यान करके 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनं उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥' इस रुद्रमन्त्र से देवता का पूजन करे। तदनन्तर नैवेद्यादि उपचारों द्वारा भद्रकाली देवी की अर्चना करना चाहिए। (अर्थात् देवता तथा भद्रकाली की पूजा अलग-अलग नैवेद्यादि द्वारा करे)। इन देव-देवी की पूजा में पट्टवस्त्र, अलंकार तथा बलिदान आदि का प्रयोग दोनों के लिए पृथक्-पृथक् करना होगा ॥ २७ ॥

दीपादग्निं समानीय धूपाद्वा चान्त्यजादपि ।
विद्वेषणाभिचारे च क्रव्यादंश न सन्त्यजेत् ।
अत्र चैव विधायाग्निं परिस्तीर्य शरैस्तृणैः ।
बिभीतकपरिध्या च कल्पयेद्यस्य मारणम् ।
जुहुयान्निम्बतैलाक्तैः काकोलूकैश्च पिञ्छकैः ।
दारयैनं पोषयैनं मारयेत्यभिधाय च ।
अष्टोत्तरशतेनैव मनसा जुहुयादृचा ।

होमान्ते विधिवत् कृत्यामाराध्याग्नेश्च सन्निधौ ।
यो मे च कण्टकं दूराद्दूरं वा चान्तिकेऽपि च ।
पिब हृदयमसृक् तस्येत्युक्त्वा च निवेदयेत् ।
संरक्षाग्निविधानेन नवरात्रिं समापयेत् ।
मृतस्तिष्ठति ज्ञात्वैवं तावदस्य रिपोर्मृतिः ।
वसनं लोहितं प्रोक्तं उष्णीशं लोहितं स्मृतम् ।
जपहोमादौ सङ्कल्प्य तदावरणमारभेत् ॥ २८ ॥

जहाँ शत्रुभय निवारण का कोई उपाय ही नहीं है, वहीं मारण कार्य करे। (यदि अन्य उपाय हो, तब मारण कार्य नहीं करना चाहिए।) शत्रु के घर से दीपक की अग्नि अथवा अथवा धूप की अग्नि लाकर उससे ही अभिचार कार्य करे। विद्वेषण आदि अभिचार कार्यों में क्रव्याद अंश का परित्याग नहीं करना पढ़ता। विधिपूर्वक अग्नि की स्थापना करके शरतृणों के द्वारा अग्नि का परिस्तरण करे। तत्पश्चात् नीम के तैल में भींगे हुए कौए के तथा उलूक के पंखों से होम करे। पुनः जिसके मारण हेतु यह कार्य किया जा रहा है उसका नाम लेते हुए 'एनं दारय एनं शोषय एनं मारय' मानसिक रूप से यही मन्त्र पढ़ते हुए १०८ बार होम करे। होम के अन्त में अग्निकुण्ड के पास कृत्यादेवी की ही अर्चना करते हुए यह निवेदन करे कि पास में या दूर में मेरा जो भी शत्रु हो उसका मांस भक्षण करो। इस प्रकार की विधि द्वारा ९ दिन तक जप होमादि कार्य करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। मारण कार्य में वस्त्र तथा उष्णीष आदि का रंग लोहित वर्ण का होना चाहिए। पहले संकल्प करके तभी जप होम आदि करे ॥ २८ ॥

विशुद्धेश्वरतन्त्रे

स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपेन च फलप्रदः ।
स्वापकालो वामवाहो जागरो दक्षिणावहः ।
शान्तिकर्मणि मिश्रं वा जपेन्मन्त्रं प्रसिद्धये ॥ २९ ॥

विशुद्धेश्वर तन्त्र के अनुसार निद्राकाल में जप करने से वह मन्त्र फलदायक नहीं होता। जब वामनासा से प्राणवायु प्रवाहित हो रही हो, उसे निद्राकाल कहते हैं। जब दक्षिण नासा से प्राणवायु प्रवाहित होती है, तब उसे जागरणकाल कहा जाता है। अतः दक्षिण नासिका से प्राणवायु बहते समय जप करना चाहिए, किन्तु शान्तिकाल में तो दोनों नासिका से प्राणवायु बहते समय ही जप करना चाहिए ॥ २९ ॥

अथ मालानिर्णयः

प्रवालवज्रमणिभिर्वश्यपौष्टिकयोजयेत् ।
मत्तेभदन्तमणिभिर्जपेदाकृष्टिकर्मणि ।

साध्यकेशसूत्रयुक्तिस्तुरङ्गदशनोद्भवैः ।
अक्षमालां परिष्कृत्य विद्वेषोच्चाटने जपेत् ।
मृतस्य युद्धशून्यस्य दशनैर्गर्दभस्य च ।
कृत्वाक्षमालां जप्तव्यं शत्रुमारणमिच्छता ।
क्रियते शङ्खमणिभिर्धर्मकाम्यर्थसिद्धये ।
पद्माक्षैः प्रजपेन्मन्त्रं सर्वकामार्थसिद्धये ।
रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रः सर्वफलप्रदः ।
स्फाटिकी मौक्तकी वापि रौद्राक्षी वा प्रवालजा ।
सारस्वताप्तये शस्ता पुत्रजीवैस्तथाप्तये ।
पद्मसूत्रकृता रज्जुः शस्ता शान्तिकपौष्टिके ।
आकृष्टयुच्चाटयोर्वाजिपुच्छबालसमुद्भवा ।
नरस्नायुविशेषैस्तु मारणे रज्जुरुत्तमा ।
अन्यासाश्चाक्षमालानां रज्जुः कार्पासिकी मता ।
सप्तविंशतिसङ्ख्याकैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति ।
अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा ।
अक्षमाला विनिर्दिष्टा तन्त्रादौ तत्वदर्शिभिः ।
अष्टोत्तरशतेनैव सर्वकर्मसु पूजिता ॥ ३० ॥

अब षट्कर्मान्तर्गत माला निर्णय कहा जाता है—वशीकरण तथा पुष्टि कर्म में प्रवाल, हीरा तथा मणियों द्वारा निर्मित माला द्वारा जप करना चाहिए । आकर्षण कार्य हेतु मदमत्त हाथी के दाँतों की माला से जप करे । विद्वेषण तथा उच्चाटन कार्य में जिस व्यक्ति का विद्वेषण अथवा उच्चाटन करना हो उसके बालों की डोरी बनाकर घोड़े के दाँतों की माला बनाकर जप करना चाहिए । शत्रु पर मारण प्रयोगार्थ युद्ध में भिन्न, मृत व्यक्ति के दाँत तथा गर्दभ के दाँतों की माला बनाकर जप करे । धर्म-काम-अर्थ सिद्धि हेतु जपार्थ शंख, मणि अथवा पद्माक्ष की माला बनाकर जप करना विहित है । रुद्राक्ष माला पर जपा गया मन्त्र समस्त फल प्रदान करता है । विद्या प्राप्ति हेतु स्फटिक माला, मोती की माला, रुद्राक्ष की माला तथा पुत्रजीव की माला प्रशस्त है । शान्ति तथा पुष्टि कार्य के लिए पद्मसूत्र से निर्मित डोरी द्वारा माला बनाये । मारण कार्य में मृत मनुष्य के स्नायु की डोरी से माला बनाना चाहिए । अन्य जपमालाओं को कपास के सूत से बनाया जा सकता है । २७ संख्या वाले मन्त्रों की माला द्वारा किया जप कार्य में फलप्रद कहा गया है । अभिचार कार्य में ५० मनकों की माला उचित है । सभी प्रकार के तांत्रिक कार्य में तत्वदर्शी विद्वानों ने १०८ मनकों की माला से जप करने का आदेश दिया है ॥ ३० ॥

अथ जपाङ्गुलिनियमः

शान्त्यादिस्तम्भवश्येषु वृद्धाग्रेण च चालयेत् ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु जपेदाकर्षणे मनुम् ।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यान्तु विद्वेषोच्चाटयोर्जपेत् ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन मारणे जप ईरितः ।। ३१ ।।

अब जपकार्य में अंगुलि नियम कहा जाता है—शान्ति-पुष्टि-स्तम्भन तथा वशीकरण में अंगूठे के अग्रभाग से माला को फेरना उचित है। आकर्षण कार्य में अंगूठा तथा अनामिका की सहायता से, विद्वेषण तथा उच्चाटन में अंगूठा तथा तर्जनी की सहायता से एवं मारण कार्य में कनिष्ठा एवं अंगूठे की सहायता से माला फेर कर जप करे ।। ३१ ।।

अथ जपदिङ्नियमः

जपेत् पूर्वमुखं वश्ये दक्षिणश्चाभिचारके ।
पश्चिमं धनदं विद्यादुत्तरं शान्तिके भवेत् ।
आयुष्यरक्षाशान्तिश्च पुष्टिं वापि करिष्यति ।। ३२ ।।

अब जप का दिशादि नियम कहा जा रहा है—वशीकरण में पूर्वाभिमुख बैठकर जप करे। मारणादि अभिचारों के लिए दक्षिणमुख, धनलाभ के लिए पश्चिममुख, आयुरक्षा शान्ति तथा पुष्टि के लिए उत्तर मुख होकर जप करना विहित है ।। ३२ ।।

अथ जपलक्षणं वाचिकादिमन्त्राश्च

यः श्रूयतेऽन्यैः स तु वाचिकं स्यादुपांशुसंज्ञोनिजदेहवेद्यः ।
निष्कम्पदन्तौष्ठमथाक्षराणां यच्चिन्तनं स्यादिह मानसाख्यः ।
पराभिचारे किल वाचिकः स्यादुपांशुरुक्तोऽप्यथ शान्तिपुष्टौ ।
मोक्षेषु जापः किल मानसाख्यः संज्ञा त्रिधा पापनुदे तथोक्ता ।।३३।।

अब जप लक्षण वर्णित है—वाचिक, उपांशु तथा मानसिक रूप से जप त्रिविध होता है। यदि जपा जाता मन्त्र अन्य व्यक्ति सुने, तब वह वाचिक है। केवल अपने कानों से सुना जाये, तब वह उपांशु है। जब दाँत तथा ओठ को हिलाये बिना केवल मन्त्राक्षर चिन्तन से जप होता है, तब वह मानसिक है। अभिचारार्थ वाचिक जप, शान्ति-पुष्टि हेतु उपांशु जप तथा मोक्षसाधनार्थ मानसिक जप प्रशस्त है ।। ३३ ।।

अथ कुण्डदिङ्नियमः

शान्तिके पौष्टिके चैव होमः स्याद्योग्यसाधनैः ।
कार्यं प्राग्वदनेनाथ सोमेन वदनेन वा ।

आकृष्टौ वायुकुण्डे च कौबेरीदिङ्मुखेन तु।
नैर्ऋतोदङ्मुखस्तस्मिन् कुण्डे विद्वेषणे हुनेत्।
आग्नेयीदिङ्मुखस्त्वेतत्कुण्डे मारुतकेऽपि वा।
उच्चाटने हुनेन्मन्त्री मारणे याम्यदिङ्मुखः।
जुहुयाद्याम्यकुण्डे तु मन्त्री तत् साधनैस्ततः।
वज्रलाञ्छितकुण्डे वा ग्रहभूतनिवारणे।
वायव्यदिङ्मुखोवश्ये कुण्डे योन्याकृतौ हुनेत्।
वज्रलाञ्छितकुण्डे वा स्तम्भे प्राग्वदनो हुनेत्।

वज्रलाञ्छितकुण्डे इति वज्रं हीरकं षट्कोणं तथा च षट्कोण-कुण्डे ॥ ३४ ॥

अब होमकुण्ड का दिशानियम कहते हैं—शान्ति-पुष्टिकर्मार्थ पूर्व मुख किंवा उत्तराभिमुख होकर होमादि करे। आकर्षणार्थं उत्तराभिमुख होकर वायुकोणस्थ कुण्ड में हवन करे। विद्वेषणार्थं नैर्ऋतमुख होकर वायुकोणस्थ कुण्ड में होम करे। उच्चाटनार्थ वायुकोणस्थ कुण्ड में अग्निकोणमुखी होकर आहुति प्रदान करे। मारणार्थ दक्षिणाभिमुखी होकर दक्षिणदिक् में स्थित कुण्ड में हवन करे। ग्रहभूतादि निवारण के लिए षट्कोण कुण्ड में वायुकोणमुख में तथा वशीकरण हेतु त्रिकोण कुण्ड में हवन करे। स्तम्भन कार्यार्थं षट्कोण कुण्ड में पूर्वाभिमुखी होकर हवन करना चाहिए ॥ ३४ ॥

अथ शान्त्यादौ द्रव्यनियमः

द्रव्याण्यथ प्रवक्ष्यामि तत्तत्कर्मानुसारतः।
शान्तिके तु पयः सर्पिस्तिलक्षीरद्रुमेण वा।
अमृताख्या लता चैव पायसं तत्र कीर्त्तितम्।
पौष्टिके तु प्रवक्ष्यामि होमद्रव्याण्यतःपरम्।
बिल्वपत्रैश्च साज्यैः स्याज्जातीपुष्पैस्तथैव च।
कन्यार्थी जुहुयाल्लाजैः श्रीकामः कमलैस्तथा।
दध्ना च श्रियमाप्नोति चान्नैश्चान्नं घृताप्लुतैः।
समृद्धौ जहुयान्मन्त्री महादारिद्रचशान्तये।
लक्षहोमाल्लभेच्छान्ति घृतबिल्वतिलैर्निधिम्।
आकर्षणे च हवनं प्रियङ्गूबिल्वकं फलम्।
जातीपलाशकुसुमैः सैन्धवैश्चैवमेव च।
राजिकालवणैर्वापि वश्यं वा पौष्टिकोदितैः।
वश्यार्थी जातिकुसुमैराकृष्टौ करवीरजैः।
कार्पासनिम्बैस्तक्राक्तैः साध्यकेशैरथापि वा।

उच्चाटने काकपक्षैरथवा मोहने पुनः ।
उन्मत्तबीजैर्जुहुयाद्विषरक्तेन[1] मारणम् ।
अजापयस्तथा सर्पिः कार्पासास्थि[2] नृणामपि[3] ।
तन्मांसञ्चापि साध्यस्य नखलोमगणैरपि ।
एकीकृत्य हुनेन्मन्त्री शत्रुमारणकांक्षया ।
जुहुयात् सार्षपैस्तैलैरथवा शत्रुमारणे ।
रोहीबीजैस्तिलोपेतैरुत्सादे जुहुयाद्यवैः ।
तुषकण्टकसंयुक्तैर्बीजैः कार्पासिकैरपि ।
सर्षपैर्लवणैर्मिश्रैर्हुनेत् सर्वाभिचारके ।
काकोलूकच्छदैः क्रूरैः कारकस्करबिभीतकैः ।
मरीचैः सर्षपैः सिक्थैरर्कक्षीरैः कटुत्रयैः ।
कटुतैलैः स्नुहीक्षीरैः कुर्यान्मारणकर्मणि ।
आयुष्कामे घृततिलैर्दूर्वाभिराम्रपत्रकैः ।
प्रयोक्तैराम्रपर्णैश्च ज्वरं सद्योविनाशयेत् ।
गुडूची मृत्युविजये तथा शान्त्यौ गजाश्वयोः ।
गौरैस्तु सर्षपैर्हुत्वा सद्योरोगं हरेद्गवाम् ।
वृष्टिकामो वैतसीभिः समिद्भिः पत्रकैस्तथा ।
हुत्वा पुष्टिमवाप्नोति पुत्रजीवैस्तु पुत्रकम् ।
घृतगुग्गुलुहोमेन वाक्पतित्वं प्रजायते ।
मल्लिकाजातिपुन्नागनागदाडिमसम्भवैः ।
पुष्पैः सरस्वतीसिद्धिस्तथा सर्वार्थसाधनम् ।
पयसा लवणैर्वापि हुनेद्वृष्टिनिवारणे ॥ ३५ ॥

(काकोलूकच्छदैः-काकपेचकपक्षैः । कारस्करः कुचिला इति ख्यातः । कटुत्रयैरिति-मरीचपिप्पलीशुण्ठीभिः । कटुतैलैरिति-सर्षपतैलैः ।) ।

अब षट्कर्म का होमद्रव्य कहा जा रहा है—शान्तिकार्य में दुग्ध, घृत, अश्वत्थादि क्षीरीवृक्ष, गुरुच की लता किं वा पायस द्वारा होम करे । पुष्टिकार्य में बिल्वपत्र, घृत अथवा चमेली के फूलों से हवन करे । कन्या की कामना वाला व्यक्ति लाजा से, श्री कामी व्यक्ति कमल से, दरिद्रव्यक्ति समृद्धि के लिए दधि अथवा घृत मिश्रित अन्न द्वारा होम करे । घृत, बिल्व तथा तिल द्वारा एक लाख आहुति देने से महानिधि की प्राप्ति होती है । आकर्षण कार्य में प्रियंगु, बिल्वफल, चमेली पुष्प, पलाश पुष्प किं वा सैन्धव नमक से, पुष्टिकार्य

---

१. विषरक्तेनेति—विषं रक्तमिश्रितं कृत्वा होमयेत् । २. कार्पासास्थि इति कार्पासबीजं । ३. नृणामपीति नरास्थि । ४. तन्मांसमिति नरमांसम् ।

में सफेद सरसों तथा नमक द्वारा होम करना चाहिए । वश्य (वशीकरण) हेतु चमेली पुष्प से, आकर्षण में कनेर के फूलों से होम करे । उच्चाटन में जिसका उच्चाटन करना हो उसके केशों द्वारा अथवा कपास बीज तथा नीम के बीज को मट्ठे में मिलाकर हवन करना चाहिए । अथवा कौए के पंख द्वारा होम करे । मोहन में भी कौए के पंख से होम करे । मारणकार्य हेतु धतूरा बीज तथा रक्त मिश्रित विष द्वारा अथवा बकरी के दुग्ध, घृत, कपास बीज, मनुष्य की हड्डी, मनुष्य मांस, मनुष्य के नख तथा रोम को मिलाकर अथवा सरसों से होम करे । उत्सादकार्य हेतु, रोहितबीज, तिल तथा जौ द्वारा, सब प्रकार के अभिचारार्थ रुई सहित कपास बीज, सरसों तथा नमक को मिलाकर हवन करना उचित है । मारण कार्य में कौआ, उलूक आदि क्रूर पक्षीगण का पंख, कुचला, विभीतक, कालीमिर्च, सरसों, मोम, मदार का दूध, त्रिकटु, (काली मिर्च, पिप्पली, शुण्ठी), सरसों का तेल, सेहुँड़ का दूध द्वारा आयुवर्धनकर्म हेतु घृत, तिल, दूर्वा एवं आम के पत्तों द्वारा हवन करे । आम्रपल्लव से हवन करने से सर्वदा ज्वर नाश होता है । मृत्युजयकार्य, गज तथा अश्व के शान्ति कार्य में गुरुच द्वारा हवन करना चाहिए । सफेद सरसों द्वारा हवन करने से गोवंश की रोग शान्ति होती है । वृष्टिकामना हेतु बेतकी समिधा तथा उसके पत्तों से होम करे । पुष्टिकामी व्यक्ति जीवित्पुत्रिका (पितौजिया) की समिधा से होम करने से पुष्टि प्राप्त करते हैं । घृत तथा गुग्गुलु से होम करने पर वाक्सिद्धि होती है । मल्लिकापुष्प, चमेलीपुष्प, अनार के फूल, नागकेशर के फूल तथा पुन्नाग पुष्प द्वारा हवन करने से सरस्वती की सिद्धि होती है । वृष्टि-निवारणार्थ दुग्ध तथा लवण द्वारा हवन करना चाहिए ।। ३५ ।।

अथ वह्निजिह्वाः शारदायाम्

पद्मरागा सुवर्णाख्या तृतीया भद्रलोहिता ।
लोहितानन्तरं श्वेता धूमिनी च करालिका ।
राजस्यो रसना वह्नेर्विहिता काम्यकर्मसु ।
विश्वमूर्त्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ।
लोहिताख्या करालाख्या काली तामस ईरिताः ।
एताः सप्त नियुज्यन्ते क्रूरकर्मसु मन्त्रिभिः ।
स्वस्वनामसमाभाः स्युर्जिह्वाः कनकरेतसः ।
हिरण्या गगना रक्ता कृष्णान्या सुप्रभा मता ।
बहुरूपाऽरिक्ता च सात्विक्यो योगकर्मसु ।। ३६ ।।

अब शारदातिलक के अनुसार अग्निजिह्वा तथा उनका विभिन्न कर्मों में प्रयोजन कहा जाता है । पद्मरागा, सुवर्णाख्या, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी तथा करालिका रूपी अग्निजिह्वा को राजस काम्यकर्मों में विहित

माना जाता है। विश्वमूर्त्ति, स्फुलिंगिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराला तथा काली रूपी अग्नि की तामजी जिह्वा को मारणादि क्रूरकर्म में विहित माना है। इन जिह्वाओं का वर्ण इनके नाम के अनुसार निर्णीत करना चाहिए। हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अतिरक्ता को अग्नि की सात्विक जिह्वा कहते हैं। ये योगकार्य में विहित हैं ॥ ३६ ॥

अन्यत्रापि वह्नेर्जिह्वा

सन्यस्या रुद्रभागे द्रुतकनकनिभा कर्षणादौ हिरण्या
वैदूर्या पूर्वभागे प्रभवति गगना स्तम्भनादौ रसज्ञा।
रक्ता बालार्कवर्णा हुतवहविदिशि द्वेषणादौ प्रशस्ता
कृष्णा जम्बूफलाभा दिशि दनुजपतेर्मारणे सुप्रशस्ता ॥
वारुण्ये सुप्रभा सा प्रतिदिशि रसना शान्तिके शोणवर्णा
हेमाभा चातिरक्ता पवनदिशि गतोच्चाटने सुप्रशस्ता।
मध्ये कुण्डस्य चान्तः प्रभवति बहुला ता यथार्थाभिधाना
एवं प्रोक्ता विभिन्ना दहनवदनगास्तान्त्रिकैर्वह्निजिह्वाः ॥ ३७ ॥

(सन्यस्या रसज्ञा–जिह्वा। रुद्रभागे–ईशानकोणे। हुतवहविदिशि–अग्निकोणे)।

अन्यान्य अग्निजिह्वाएँ इस प्रकार हैं, ईशानकोण में अग्नि की सुवर्णवर्णा-हिरण्या नाम्नी जिह्वा को आकर्षण कार्य में उचित माना गया है। पूर्व की ओर नीलकान्तमणि के समान नीलवर्णा गगना जिह्वा को स्तम्भनादि में, अग्निकोणस्थ अरुण के समान रक्तवर्णा रक्ताजिह्वा को विद्वेषण में, नैऋत-कोणस्थ नीलपद्मवर्णा कृष्णानामक जिह्वा को मारण कार्य में, पश्चिमस्थ रक्तवर्णा सुप्रभा नामक जिह्वा को शान्ति कर्म में, वायुकोणस्थ सुवर्णवर्णा अतिरिक्ता जिह्वा को उच्चाटनादि कार्य में तथा कुण्ड के मध्य में स्थिता बहुला नामक जिह्वा को अर्थलाभ कार्य में प्रशस्त माना गया है। (इन जिह्वाओं में हवन करना चाहिए) ॥ ३७ ॥

अथाग्नेर्नामानि

पूर्णाहुत्यां मृडोनाम शान्तिके वरदस्तथा।
पौष्टिके वरदश्चैव क्रोधोऽग्निश्चाभिचारके।
वश्यार्थे कामदो नाम वरदाने च चूडकः।
लक्षहोमे वह्निनाम कोटिहोमे हुताशनः ॥ ३८ ॥

अब अग्नि के नाम कहे जाते हैं—होम के समय कार्य के अनुसार अग्नि क नामकरण होता है। किस कार्य में किस अग्नि की पूजा की जाये, यही इसका तात्पर्य है। पूर्णाहुति में मृड नाम है। शान्ति कार्य में वरद, पुष्टि में बलद,

अभिचार में क्रोध, वशीकरण में कामद, वरदान में चूडक, लक्षहोम में वह्नि तथा कोटिहोम में हुताशन अग्नि का नाम रहता है ॥ ३८ ॥

अथ होमव्यवस्था

द्रव्याशक्तौ घृतं होमे त्वशक्तौ सर्वतो जपेत् ।
मूलमन्त्राद्दशांशः स्यादङ्गादीनां जपक्रिया ।
अशक्तावुक्तहोमस्य जपस्तु द्विगुणो मतः ।
येषां जपे च होमे च सङ्ख्या नोक्ता मनीषिभिः ।
तेषामष्टसहस्राणि सङ्ख्योक्ता जपहोमयोः ।
स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण कुर्याद्धोमं बलिं तथा ।
नमोऽन्तेन नमस्कारमर्च्चनञ्च समाचरेत् ।
मन्त्रान्ते नाम संयोज्य तर्पयामीति तर्पणम् ।
सङ्ख्यानुक्तौ जपे होमे चाष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ ३९ ॥

अब होम व्यवस्था कहते हैं। यज्ञ द्रव्य का यदि अभाव हो, तब केवल घृत से ही हवन किया जा सकता है। इसमें भी सदि अशक्तता हो, तब केवल जप करे। मूलदेवता के मन्त्र का जितना जप करे, उसका दशांश अंगदेवता का मन्त्र जपे। होम में अशक्त होने पर होमसंख्या का दूना जप करना चाहिए। जहाँ-जहाँ पर जप अथवा हवनाहुति की संख्या अंकित नहीं है, वहाँ १००८ जप तथा हवन करना विहित है। मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाकर बलि तथा आहुति दी जाती है। नमस्कार एवं अर्चना के समय नमः शब्द मन्त्र के साथ अन्त में लगायें। तर्पण के समय मन्त्रान्त में देवता का नाम जोड़कर 'तर्पयामि नमः' से तर्पण करे। जहाँ जप तथा हवन की संख्या का अंकन नहीं है वहाँ १००८ जप एवं हवन में आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ ३९ ॥

अथ स्रुक्स्रुवनियमः

षट्त्रिंशदङ्गुला स्रुक् स्याच्चतुर्विंशाङ्गुलो स्रुवः ।
मुखं कण्ठं तथा वेदीं सप्त चैकाष्टभिः क्रमात् ।
आयामानाहतो दण्डो विंशतिश्च षडङ्गुलः ।
(आयामानाहत इति–दैर्घ्यं विस्तारश्च) ।
वेदरामाङ्गुलैः कुण्डो गर्त्तो हि चतुरङ्गुलः ।
खातं वेदाङ्गुलैर्वृत्तं अङ्गुलत्रितयं खनेत् ।
मेखला द्व्यङ्गुला तद्वत् शोभाशेषं विचिन्तयेत् ।
(शोभाशेषमिति–मेखलाबहिर्भागस्य शोभासंज्ञा) ।
वेदीत्र्यंशेन विस्तारं कुर्यात् कुण्डमुखाग्रयोः ।
कनिष्टाग्रमितं रन्ध्रं स्रुचो घृतविनिर्गमे ।

(अन्यच्च कार्ष्णिकद्व्यङ्गुलं खातं पक्षे मृगपदाकृतिः। कार्ष्णिक-द्वयङ्गुलं दण्डानाहस्तस्य तेऽङ्गुलः। इति वा पाठः।

द्वाविंशत्यङ्गुलोदण्ड आनाहश्च कृताङ्गुलः।
दण्डमूलाग्रयोर्गण्डीस्रुवे कङ्कणवद्भवेत्)।
सुवर्णरौप्यताम्रैर्वा स्रुकस्रुवौ दारुजावपि।
आयसीयौ स्रुकस्रुवौ कारस्करमयावपि।
नागेन्द्रलतयोर्विद्यात् रुद्रकर्मणि संस्थितौ।
चन्दनं खदिराश्वत्थप्लक्षचूतविकङ्कताः।
चम्पामलकसादाश्च पालाशाश्चेति दारवः॥ ४०॥

अब स्रुक् तथा स्रुवा नियम कहते हैं—३६ अंगुल का स्रुक् तथा २४ अंगुल की स्रुवा प्रस्तुत करे। स्रुक् तथा स्रुवा का मुख सप्त अंगुल कण्ड एक अंगुल तथा वेदी आठ अंगुल की हो। दण्ड की लम्बाई २० अंगुल तथा विस्तार ६ अंगुल हो। दोनों का कुण्ड भाग ३४ अंगुल विस्तृत होना चाहिए। जिसमें ४ अंगुल का गर्भ हो। यह गर्भ वर्त्तुलाकार तथा ३ अंगुल खात वाला होगा। गर्भ के बाहर २ अंगुल की मेखला तथा उसका बहिर्भाग में शोभा करना होगा। मेखला का बहिर्भाग ही शोभा है। वेदी के तृतीयांश में कुण्डमुख तथा अग्रभाग का विस्तार करे। स्रुक् के अग्रभाग में घृत निर्गमन के लिए कनिष्ठा के बराबर छिद्र हो। मतान्तर से स्रुक् का २ अंगुल का गर्भ हो और उसके नीचे हिरण के पैर के समान क्रमशः पतला करके अथवा स्रुक् का २ अंगुल परिणाम का गर्भ बनाकर उसके दैर्घ्य तथा प्रस्थ को पूर्वोक्त क्रम से रखना होगा अथवा दण्ड की लम्बाई २२ अंगुल तथा प्रस्थ एक अंगुल का रखना होगा। दण्ड के मूल, अग्रभाग, गलदेश तथा स्रुवा का निर्माणादि प्रकार सुवर्ण कंकण जैसा हो। स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, लोहा अथवा काष्ठ द्वारा स्रुक् एवं स्रुवा का निर्माण करे। रुद्रकार्य हेतु नागेश्वर तथा कुचला वृक्ष के काष्ठ से स्रुक् स्रुवा बनाये। चन्दन, खदिर, पीपल, पाकड़, आम, बहेड़ा, चम्पक, आमलकी तथा पलाश की लकड़ी से स्रुक् स्रुवा बनाने का नियम है॥ ४०॥

अथ होममुद्रा

न देवाः प्रतिगृह्णन्ति मुद्राहीनं यथाहुतिम्।
मुद्रयैवेति होतव्यं मुद्राहीनं न भोक्ष्यति।
मुद्राहीनञ्च यो मोहाद्धोममिच्छति मन्दधीः।
यजमानं स चात्मानं पातयेत्तेन निश्चितम्।
तिस्रोमुद्राः स्मृता होमे मृगी हंसी च शूकरी।
शूकरी करसंकोची हंसी मुक्तकनिष्ठिका।
मृगी कनिष्ठातर्जन्योर्होममुद्रेयमीरिता।

अभिचारिककार्येषु शूकरी परिकीर्त्तिता ।
नमः स्वाहा वषट् हुं च फडन्तास्तस्य जातयः ।
शान्तौ वश्ये तथा स्तम्भे विद्वेषोच्चाटमारणे ॥ ४१ ॥

इत्यन्नदाकल्पे अष्टादशं पटलम् ।

अब होम की मुद्राविधि कहते हैं—देवगण कदापि मुद्रारहित आहुति ग्रहण नहीं करते । जो मन्द बुद्धि व्यक्ति मोह के कारण मुद्रारहित हवन करता है, वह स्वयं तथा यजमान को नरक में ले जाता है । होम में तीन मुद्राएँ विशेषतः उपयुक्त हैं—मृगी, हंसी तथा शूकरी करसंकोची ही शूकरी मुद्रा है । कनिष्ठा के अतिरिक्त सभी उँगलियों से हंसी मुद्रा बनती है । कनिष्ठा तथा तर्जनी से मृगी मुद्रा बनायी जाती है । अभिचार में शूकरी मुद्रा प्रशस्ता है । शान्तिकार्य में नमः, वशीकरण में स्वाहा, स्तम्भन में वषट्, विद्वेषण में वौषट्, उच्चाटन में हुं एवं मारण में फट् का प्रयोग मन्त्र के अन्त में करना चाहिए ॥ ४१ ॥

१८वाँ पटल समाप्त ।

एकोनविंशं पटलम्

अथ शान्तिकर्माभिधीयते

ऋषय उचुः

नामत्रयस्य माहात्म्यं श्रोतुकामा वयं प्रभो।
भगवन् श्रोतुमिच्छामो वक्तुमर्हस्यशेषतः।

ब्रह्मोवाच

अतिगुह्यतरं मन्त्रं वर्षकोटिशतैरपि।
नशक्यं विस्तराद् वक्तुं संक्षेपाच्छृणुत द्विजाः॥ १॥

अब शान्ति कर्म कहते हैं।

ऋषिगण ने ब्रह्मा से पूछा—हे प्रभो! हम नामत्रय का माहत्म्य सुनना चाहते हैं।

अतः आप कृपया उसे कहिये। ब्रह्मा कहते हैं—हे ऋषिगण! तुमने जो पूछा वह अत्यन्त गोपनीय है। शतकोटि वर्षों में भी उसके माहात्म्य का वर्णन सम्पन्न नहीं किया जा सकता। तब भी मैं संक्षेप से कहता हूँ। सुनो—

अथ अच्युतादौ पूजादिः

अच्युतानन्तगोविन्दैश्चतुर्थ्यन्तैस्त्रिभिः पदैः।
नमोऽन्तैर्जपकाले तु मूलमन्त्र इतीरितः।
अथवापि समस्तैस्तु चतुर्थ्यन्तैकमन्त्रता।
तदृषिः शौनको ज्ञेयः पृथक् पक्षे पराशरः।
व्यासश्च नारदश्चैव विराट्छन्द उदीरितः।
परं ब्रह्म तथा प्रोक्तं हरिर्वा देवतेत्यपि।
जपकाले तु पूजायां नमः शब्दं प्रयोजयेत्।
तर्पणे तर्पयामीति द्वितीयान्तं प्रयोजयेत्।
स्वाहान्तं होमकाले तु चतुर्थ्यन्तं तु योजयेत्।
षडङ्गमन्त्रैरेतैस्तु हृदयादिक्रमेण तु।
नेत्रान्ताः स्वयमेवैते प्रयोज्या मन्त्रवित्तमैः।
अविदित्वा ऋषिं छन्दोदेवताङ्गान्यपि द्विजः।
केवलं स्वयमेवैतज्जप्तारं रक्षति ध्रुवम्।
साङ्गञ्च योजयेन्नित्यं सप्त सप्त च सप्त च।

सप्तवारं यदि कृते न सिध्यति तदा पुनः ।
सप्तवारं कुर्यात् प्रयोगमित्यर्थः ॥ २ ॥

अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः । इन तीनों को पृथक् मूलमन्त्र जानो । अथवा 'अच्युतानन्तगोविन्दाय नमः' इस एक मन्त्र से जप पूजादि करो । इस 'अच्युतानन्दगोविन्दाय नमः' मन्त्र के ऋषि हैं शौनक । 'अच्युताय नमः' के ऋषि हैं पराशर । 'अनन्ताय नमः' के ऋषि हैं व्यास तथा 'गोविन्दाय नमः' के ऋषि हैं नारद । चारों मन्त्रों का छन्द हैं विराट् । इसके देवता हैं हरि । जप अथवा पूजा के समय नमः शब्द लगाकर कार्य करे । तर्पण के समय 'अच्युतं तर्पयामि', इस प्रकार के द्वितीयान्त वाक्य द्वारा तर्पण करे । होमकाल में 'अनन्ताय स्वाहा', इस प्रकार चतुर्थ्यन्त वाक्य को कहे । एवं हृदयादि से नेत्र पर्यन्त अंग न्यास करे । ऋषि, छन्दः तथा देवता एवं अंग मन्त्र को जाने बिना केवल मन्त्र जपने से भी मन्त्र उसकी रक्षा करता है । ऋषि, छन्दः आदि का ज्ञान होने से केवल सात बार जपने से ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है । यदि सात बार जप से सिद्धि न मिले तब पुनः सात बार जप करे । इससे भी सिद्धि न मिलने पर पुनः सात बार जप करने से निश्चय सिद्धि मिलती है ॥ २ ॥

अथ हरिध्यानम्

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ।
शङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम् ।
सर्वायुधैरुपेतञ्च गरुडोपरिसंस्थितम् ।
सनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम् ।
श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम् ।
प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमण्डलोपरिसंस्थितम् ।
सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव च ।
अभयं वरदञ्चैव प्रयच्छन्तं मुदान्वितम् ।
एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
प्रातर्मध्यन्दिने चैव सायाह्ने च विशेषतः ।
अर्च्चयेद्देवदेवेशं घृतपुष्पजलादिभिः ।
हविष्याग्नौ जलैः पुष्पैर्मनसा हृदये हरिम् ।
अर्चयन्तं च यो नित्यं जपेन रविमण्डले ।
किञ्चिद्ध्यानार्चनं कृत्वा जपेन्नित्यमतन्द्रितः ।
अशुचिश्चात्मनोवापि मनसा पापमाचरेत् ।
शुचिरेव जपेन्नित्यं नामत्रयजपाद्द्विजाः ।

विनियोगान् प्रवक्ष्यामि यथावद्द्विजसत्तमाः।
नास्मात्परतरा रक्षा रोगार्त्तानां विधीयते।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा जपसङ्ख्यया।
रोगार्त्तान्मार्जयेन्मूर्ध्नि रविवारे तथाष्टमीम्।
नित्यमेव पिबेत्तोयमष्टाविंशतिसङ्ख्यया।
हुनेद् घृतैस्तिलैर्दूर्वागुडूचीभिः पृथक् पृथक्।
लक्षञ्चैव जपेन्मन्त्रं महारोगप्रशान्तये।
श्रीवृक्षाश्वत्थमूले वा रोगिणं संस्पृशन् जपेत्।
स्पृशन् जप्त्वा निरीक्षेति चादित्यं मनसा स्मरन्।
एवं कृतरतः पुंसो रोगशान्तिर्भविष्यति।
कन्यां वा लाजहोमेन स्त्रियं वा बिल्वपत्रकैः।
पुत्रार्थी घृतहोमेन चारोग्यश्च तिलैर्घृतैः।
गुडूचीघृतदूर्वाभिस्तिलैर्बिल्वैः कुशैः शरैः।
यथाकामी तु जुहुयात्तत्तत्कामस्य सिद्धये।
ग्रहापस्मारकूष्माण्डाः पिशाचाः प्रेतसंस्थिताः।
लक्षे हुते च दूर्वाभिस्तेषां शान्तिर्भविष्यति।
रविवारे जले स्थित्वा नाभिमात्रे जपेन्नरः।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु ज्वरशान्तिर्भविष्यति।
स्पृष्ट्वाश्वत्थं जपेद्वर्षं रविमण्डलमध्यगम्।
ध्यायेत् कृष्णं लभेत् काममनुरूपं कुटुम्बिनाम्।
अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभीषिताः।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते।
वेदशास्त्रात् परं नास्ति न देवः केशवात् परः।
ज्वरग्रहादिग्रस्तन्तु स्पृष्ट्वा लक्षं जपेज्जले।
असाध्योऽपि भवेत् सुस्थो भस्मना ताडयेद् बुधः।
मूर्ध्नि चैव ललाटे च न्यसेन्मन्त्रत्रयं हृदि।
आरोग्यं सर्वजन्तूनां यथेच्छं गच्छति स्वयम्।
मोक्षकामो जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम्।
यावज्जीवं करे तस्य स्थिता मुक्तिर्न संशयः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च विविधास्तथा।
सर्वे भवन्ति वै मुक्ता नामत्रयजपाद् द्विजाः।

दूर्वाभवाश्च समिधो गोदुग्धेन समन्विताः।
होतव्याः शान्तिके देवि शान्तिर्येन भवेत् स्फुटम्॥ ३॥

इति सनत्कुमारसंहितायां शान्तिकल्पे नामत्रयकल्पं सम्पूर्णम्।

अब सर्वपापप्रणाशक ध्यान कहते हैं। देवता की आकृति इस प्रकार की है। चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा तथा पद्म हैं। मस्तक पर मुकुट है। सभी अस्त्रों से विभूषित तथा गरुड़ पर आसीन हैं। सनकादि मुनिगण तथा देवगण उनकी निरन्तर स्तुति करते रहते हैं। वे लक्ष्मी के साथ हैं। उनकी देह कान्ति सूर्य के समान है और वे प्रातःकालीन सूर्यमण्डल पर स्थित हैं। वे सर्वदा अभय एवं वर देते रहते हैं। इस प्रकार से परब्रह्मरूपी हरि को प्रत्येक दिन प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में ध्यान करके उनकी अर्चना घृत, पुष्प तथा जल द्वारा करना चाहिए। घृत से अग्नि में हवन करके जल एवं पुष्प से अर्चना करके हरि का हृदय में चिन्तन करे। इस प्रकार सूर्यमण्डल में हरि का ध्यान तथा अर्चना करके संयत चित्त से प्रतिदिन नियमित रूप से जप करे। अशुचि स्थिति में जप करने से मानसिक पाप हो जाता है। अतः पवित्र होकर नित्य प्रति पूर्वोक्त नामत्रय 'अच्युत-अनन्त-गोविन्द का जप करे। इससे रोग से ग्रसित व्यक्ति की रोग शान्ति हो जाती है। इससे उत्तम और कोई उपाय रोग शान्ति का नहीं है। रविवार की अष्टमी को १००८ अथवा १०८ मन्त्र जप करके रोगी व्यक्ति के मस्तक का मार्जन करे एवं प्रतिदिन २८ बार मन्त्र जप करके उसे जल पिलाये। तदनन्तर घृतमिश्रित तिल, दूब तथा गुरुच द्वारा अलग-अलग हवन करना चाहिए। पूर्वोक्त मन्त्र का एक लक्ष जप करने से महारोग शान्त हो जाता है। श्रीफल अथवा बेल के पेड़ की जड़ से रोगी का स्पर्श करते हुए मन्त्र का जप करके मन ही मन सूर्य का स्मरण सूर्यमण्डल देखते हुए करे। इससे रोगी के रोग का निवारण होता है। कन्या की रोग शान्ति हेतु लावा से, स्त्री की शान्ति हेतु बिल्वपत्र से, पुत्रार्थी व्यक्ति घृत से होम करे। तिल-घृत द्वारा हवन करने से आरोग्य प्राप्त होता है। गुरुच, घृत, दूर्वा, बिल्व, कुश तथा शरतृण से होम करने पर कामनासिद्धि होती है। दूर्वा से १००००० आहुति देने से ग्रहदोष, अपस्माररोग, कूष्माण्ड, पिशाच तथा प्रेतबाधा शान्त हो जाती है। रविवार को नाभिपर्यन्त जल में खड़े होकर १००८ मन्त्र जपने से ज्वर शान्त हो जाता है। पीपल वृक्ष का स्पर्श करते हुए रविमण्डल में स्थित कृष्ण का ध्यान करके १ वर्ष-पर्यन्त पूर्वोक्त तीनों मन्त्र को जपे। इससे इच्छानुरूप फल मिलता है। इस नाम के उच्चारण से समस्त रोग निवृत्त हो जाते हैं। हाथ उठाकर कहता हूँ—'वेदशास्त्रात् परं नास्ति न देवः केशवात् परः'। इस प्रकार कीर्तन करके तथा ज्वरग्रस्त व्यक्ति का स्पर्श करके स्थिरचित्त होकर अच्युत अनन्त गोविन्द मन्त्र को जपते हुए रोगी को भस्म से ताड़न करे। इससे

असाध्य ज्वर का निवारण होता है। रोगी के मस्तक, ललाट तथा हृदय में इस मन्त्र का न्यास करने से भी आरोग्य प्राप्त होता है और जप द्वारा समस्त जन्तुओं के रोग का नाश हो जाता है। मोक्ष चाहने वाला व्यक्ति इसका १००८ जप करके मुक्ति को हस्तगत करता है, यह निःसंदिग्ध है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तथा क्षूद्र एवं अन्य संकर जाति वाले भी इसके जप से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। शान्तिकार्य में दूर्वा की समिधा को गाय के दूध में मिलाकर होम करने से निश्चित रूप से शान्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

अथाथर्वणोक्तज्वरशान्तिः

अस्य मन्त्रस्य अगस्त्यः ऋषिरनुष्टुप्छन्दः कालिका देवता ज्वरस्य सद्यः शान्त्यर्थे विनियोगः।

ॐ कुबेरन्ते मुखं रौद्रं नन्दिमानादिमावहन्।
ज्वरं मृत्युभयं घोरं ज्वरं नाशयते ध्रुवम्।
केचित्तु — ॐ कुबेरन्तु सुखं रात्रं नन्दिकानन्दमावहन्।
ज्वरमृत्युभयं घोरं ज्वरं नाशयते ध्रुवम्।
सहस्रमयुतं वापि जपेत् शान्तिर्भवेद्ध्रुवम्।
आम्रपत्रस्य होमेन ज्वरशान्तिर्भवेन्नृणाम् ॥ ४ ॥

अब अथर्वणोक्त ज्वरशान्ति कही जाती है—इस मन्त्र के ऋषि हैं अगस्त्य, छन्द है अनुष्टुप् तथा देवता कालिका हैं। ज्वर की तत्काल शान्ति हेतु इसका विनियोग किया जा रहा है। इस मन्त्र का ऋषि आदि न्यास करके मूलमन्त्र से षडंग न्यास करे और उक्त दोनों में से एक श्लोक का १००० अथवा १०००० जप करके आम्रपत्र से दशांश हवन करना निश्चित् फलदायक तथा ज्वर नाशक होता है ॥ ४ ॥

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य शान्ते युग्मं तथैव च।
सर्वारिष्टनाशिनी च तदन्ते वह्निवल्लभा।
ॐ शान्ते शान्ते सर्वारिष्टनाशिनि स्वाहा।
एकलक्षजपेनापि सर्वशान्तिर्भवेद्ध्रुवम्।

अयुतजपेन सिद्धिः। अस्य मन्त्रस्यायुतजपेन सिद्धि कृत्वा प्रयोगः कार्यः।

समाहितमना भूत्वा मनसा चार्थचिन्तनात्।
विज्ञेया मानसी भक्तिः शान्तिकर्मणि योजयेत् ॥ ५ ॥

'ॐ शान्ते शान्ते सर्वारिष्टनाशिनि स्वाहा' का एक लाख जप करने से सर्व शान्ति हो जाती है। दस सहस्र जप करने से भी इसकी सिद्धि होती है। तदनन्तर प्रयोग करे ॥ ५ ॥

अथ तन्त्रोक्तज्वरशान्तिः

कथयाम्यथ लोकानां हिताय सर्वशान्तिकम् ।
विधानं यन्मया दृष्टं तन्त्रराजे मयोत्तरे ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं देवदेवं त्रिलोचनम् ।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं चन्द्रचूडं जटाधरम् ।
चतुर्भुजं वृषारूढं तुम्बुरुं भैरवाभिधम् ।
शूलमालाधरं दक्षे वामे पुस्तं सुधाघटम् ।
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
सितवस्त्रपरीधानं नागहारविराजितम् ।
मानसे भावयेदेवं सर्वशान्तिकरं शिवम् ।। ६ ।।

अब तन्त्रोक्त ज्वरशान्ति कहते हैं। शिव कहते हैं—हे पार्वती ! तन्त्र-श्रेष्ठ उत्तरतन्त्र में जो विधान है उसे कहता हूँ। प्रथमतः तुम्बुरु भैरव का ध्यान करे। उनकी आकृति यह है—उनकी देह कान्ति निर्मल स्फटिक के समान है। वे देवाधिदेव, त्रिलोचन तथा चन्द्रमण्डलमध्यवर्त्ती हैं। उनके मस्तक पर चन्द्र है। जटाधारी, चतुर्भुज तथा वृषवाहन हैं। इनके दोनों दाहिने हाथों में शूल तथा माला है। दोनों बायें हाथों में है, पुस्तक एवं सुधा पूर्ण घटा ये सर्वावयसंयुक्त तथा समस्त आभरणों से विभूषित हैं। इनका वस्त्र श्वेत है तथा गले में सर्पों की माला है। इनका ध्यान करने से समस्त रोग शान्त हो जाते हैं ।। ६ ।।

अथ तुम्बुरुभैरवमन्त्रः

अस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि देवानामपि दुर्लभम् ।
येन विज्ञानमात्रेण जायन्ते सर्वसिद्धयः ।
आदौ तारं समुद्धृत्य तुम्बुरुभैंरवेति च ।
पदं दत्वा शिवं बीजं अमुकस्य पदं वदेत् ।
सर्वशान्तिपदं दत्वा पदं देयं कुरुद्वयम् ।
ईशानं वह्निमारूढं द्वितीयस्वरभूषितम् ।
नादविन्दुसमायुक्तं वह्निमायामनन्तरम् ।
अनेन बलिमादद्यादन्नादिकसमन्वितम् ।
ॐ तुम्बुरु भैरव ह्रों अमुकस्य सर्वशान्ति कुरु कुरु ह्रीं रं ह्रीं ।
पूजयेत् श्वेतदूर्वाभिर्नानापुष्पैर्विशेषतः ।
धूपदीपादिसंयुक्तैः सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ।
यस्य नाम्ना भवेत्तस्य सर्वशान्तिरनुत्तमा ।
साध्यमौली सुधाधारं तस्य मूर्ध्नि प्रवर्षिणम् ।

अहर्निशं स्मरेदेवं शान्तिपुष्टिकरं शिवम् ।
होमं वा कारयेदेभिर्दूर्वापुष्पाक्षतादिभिः ।
तिलजीरसमायुक्तैर्द्रव्यैश्च घृतसंयुतैः ।
त्रिकोणके ततः कुण्डे वह्निं प्रज्वाल्य होमयेत् ।
दशाङ्गकस्य होमेन ततः शान्तिर्भवेदिति ॥ ७ ॥

अब तुम्बुरु भैरव का मन्त्र कहते हैं—यह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। 'ॐ तुम्बुरु भैरव ह्रीं अमुकस्य सर्वशान्ति कुरु कुरु ह्रीं रं ह्रीं' इस मन्त्र से अन्नादिसंयुक्त बलि प्रदान करे। इस मन्त्र से श्वेत दूर्वा, नाना प्रकार के पुष्प एवं धूपदीपादि उपचारों द्वारा पूजा करके उक्त मन्त्र को एक हजार जपे। 'अमुक' के स्थान पर रोगी का नाम लगाये। इससे रोग शान्ति होती है। दिन रात यह चिन्तन करे कि रोगी के मस्तक पर भैरव देव अमृत वर्षण कर रहे हैं। अथवा दूर्वा, पुष्प तथा चावल, घृत मिश्रित तिल तथा जीरा से उक्त मन्त्र की आहुति दे। इसके त्रिकोण कुण्ड में अग्नि जलाये तब हवन करे। जप का दशांश हवन करने से सर्वशान्ति होती है ॥ ७ ॥

अथ सञ्जीवनीविद्या

अथवापि महादेव्याः सञ्जीवन्याः क्रमादिह ।
जपेन कारयेच्छान्तिं सर्वोपद्रवनाशिनीम् ।

ॐ नमो भगवति मृतसञ्जीवनि अमुकस्य शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा ।

अनेन मनुना मन्त्री भावयित्वा सुचेतसा ।
गोक्षीरशशिमिश्राभामर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ।
त्रिमुखीं षड्भुजां त्र्यक्षीं नृत्यन्तीं यमपृष्ठगाम् ।
जटाजूटसमायुक्तां रक्तवस्त्रपरिच्छदाम् ।
खड्गं त्रिशूलं कर्त्रीञ्च दक्षिणे दिशि वामके ।
खेटकं डमरुं चक्रं धारयन्तीं शवासनाम् ।
प्रत्यालीढपदाम्भोजां मुण्डमालावलम्बिनीम् ।
काञ्चीमञ्जीरहाराद्यैर्भूषणैः परिभूषिताम् ।
अस्याश्च ध्यानमात्रेण तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥ ८ ॥

अब मृतसंजीवनी विद्या कहते हैं। 'ॐ नमो भगवति मृतसंजीवनी अमुकस्य शान्ति कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्र का जप करने से सर्व उपद्रव विनष्ट हो जाते हैं और समस्त रोगों की शान्ति होती है। इस मन्त्र का जप करके स्थिर होकर ध्यान करे।

देवी की आकृति इस प्रकार है—उनकी देह प्रभा गाय के दूध तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है। उनके कपाल में अर्द्धचन्द्र है, तीन मुख, ६ हाथ

तथा तीन नेत्र हैं। ये नृत्य परायणा हैं और यम की पीठ पर आसीन हैं। मस्तक पर जटाएँ हैं तथा लाल वस्त्र पहनती हैं। दाहिनी ओर के तीनों हाथों में खड्ग, त्रिशूल तथा कर्तृका हैं। बायीं ओर के तीनों हाथों में गदा, डमरू तथा चक्र हैं। शवासन पर स्थित इनका दाहिना पैर आगे है और बायां पैर पीछे है। इन्होंने मुण्डमाला धारण किया है। नाना आभूषणों से विभूषिता हैं। इस प्रकार ध्यान करने से ऐसा कोई कार्य नहीं है जो साधित न हो ॥८॥

अथ मृण्मयशिवलिङ्गपूजनविधिः

मृत्तिकायाः शिवलिङ्गपूजायां कालान्तरे नारदवाक्यम्—

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां सङ्गो गङ्गाम्भः शम्भुसेवनम्।

स्कन्दपुराणे–

अग्निहोत्रास्त्रिवेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
शिवलिङ्गार्चनस्यैते कोटचंशेनापि नो समाः।
छित्वा भित्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत्।
यजेद्देवं विरूपाक्षं न स पापेन लिप्यते।
अनेकजन्मसाहस्रं भ्राम्यमानन्तु योनिषु।
कः समाप्नोति वै मुक्तिं लिङ्गार्चनमृते नरः।
प्रातरुत्थाय यो लिङ्गं भक्त्या संपूजयेत् सकृत्।
कपिलादानसङ्ख्याया यत्फलं तदवाप्नुयात्।
मध्यन्दिनकरे प्राप्ते यो लिङ्गं परिपूजयेत्।
सम्पूर्णां पृथिवीं दत्वा यत्फलं तदमाप्नुयात्।
वारुणीमाश्रिते सूर्ये शिवं सम्यक् समर्चयेत्।
गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

अब मृत्तिका निर्मित शिवलिंगपूजन का विधान कहते हैं। नारद का कथन है कि इस असार संसार में काशीवास, सत् समागम, तीन वेद तथा सदक्षिणा यज्ञ आदि सत्कार्य शिव पूजा की तुलना में करोड़वां भाग भी नहीं हैं। समस्त प्राणियों को नष्ट भ्रष्ट करके तथा जगत् के विनाश को भी करके जो प्राणी शिव पूजा करता है, उसे कोई भी पाप स्पर्श नहीं करते। सहस्र नाना योनियों में जन्म लेकर भी शिवलिंग अर्चना के अभाव में कोई मुक्त नहीं हो सकता। जो प्रातःकाल में उठकर मात्र एक बार भक्ति से शिव पूजा करता है, वह अनेक कपिला गोदान का फल प्राप्त करता है। मध्याह्न में जो शिवार्चन करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वी दान करने जितना फल लाभ होता है। जब सूर्य डूब रहा होता है, उस समय शिव पूजन करने से शत सहस्र गोदान के समान फल की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥

आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका ।
प्रलये सर्वदेवानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते ॥ १० ॥

आकाश लिंग है और पृथ्वी उसका आसन है । महाप्रलय में समस्त देवता एकमात्र लिंग रूपी महादेव में लयीभूत हो जाते हैं । एकमात्र लिंग वर्त्तमान रहता है ॥ १० ॥

अथ लिङ्गप्रमाणं, शिवतन्त्रे

मृत्तिमातोलकं ग्राह्यमथवा तोलकद्वयम् ।
त्रिसूत्रस्य प्रमाणेन गठनं कारयेद्बुधः ।
स्वाङ्गुष्ठपर्वमानन्तु कृत्वा लिङ्गं प्रपूजयेत् ।
मृदादिलिङ्गगठने प्रमाणं परिकीर्त्तितम् ।
फलं मुक्तिमवाप्नोति चान्यथा चेत्तथान्यथा ॥ ११ ॥

अब शिवलिंग का प्रमाण कहते हैं—शिवतन्त्र में उक्त है कि शिवलिंग निर्माणार्थ एक तोला किं वा दो तोला मृत्तिका लेकर त्रिसूत्र प्रमाण लिंग बनाये । अंगुष्ठ के नाप का लिंग बनाकर पूजन करे । यह मृत्तिमा गठित शिवलिंग का प्रमाण है । इसका पूजन करने से अवश्यमेव मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ११ ॥

तथान्यत्प्रमाणं कालोत्तरे

लिङ्गे वेद्यां तथा पीठे सूत्रत्रयनिपातनात् ।
समानञ्चेद्विजानीयात् त्रिसूत्रीकरणन्त्विदम् ।
मरक्तं स्फटिकादीनां पञ्चसूत्रीप्रमाणकम् ॥ १२ ॥

कालोत्तर तन्त्र में अंकित है कि लिंग, लिंगवेदी तथा लिंग पीठ में तीन सूत्र से नाप कर उस सूत्र का परिमाण बनाये । यदि ये तीनों सूत्र सम परिमाणी है तब त्रिसूत्रीकरण होता है । ऐसे लिंग को त्रिसूत्र प्रमाण कहते हैं । स्फटिक, मरकत आदि का लिंग पंचसूत्री प्रमाण होना चाहिए ॥ १२ ॥

तथान्यत्प्रमाणं लिङ्गपुराणे

शिवलिङ्गस्य यन्मानं तन्मानं दक्षसव्ययोः ।
योन्यग्रमपि तन्मानं तदधोऽपि तथा भवेत् ॥ १३ ॥

लिंग पुराण में उक्त है कि शिवलिंग का जैसा परिमाण है, उसके वाम एवं दक्षिण में भी वैसा ही परिमाण हो एवं योनि का जो परिमाण है, उसके अधोभाग का भी वही परिमाण होना चाहिए ॥ १३ ॥

तथा प्रमाणमन्यत् तन्त्रान्तरे

लिङ्गस्य यादृग्विस्तारः परिणाहोऽपि तादृशः ।
लिङ्गस्य द्विगुणावेदी योनिस्तदर्द्धसम्मिता ।
सर्वतोऽङ्गुष्ठतो ह्रस्वं स्यात् कदाचिदपि क्वचित् ।
रत्नादिषु च निर्माणे मानमिच्छावशाद् भवेत् ।। १४ ।।

अन्य तन्त्र में उक्त है कि लिंग के परिमाण के अनुसार उसका विस्तार करे । लिंग परिमाण से दूना वेदी का परिमाण करे । वेदी का आधा योनि का परिमाण होगा । कोई भी परिमाण अंगुष्ठ से छोटा न हो । रत्नादि द्वारा निर्मित लिंग का कोई भी परिमाण नहीं है । इच्छानुरूप परिमाण से उसे बनाया जा सकता है ।। १४ ।।

प्रमाणान्तरं शिवधर्मे

ब्रह्मा सम्पूजयेन्नित्यं लिङ्गं शिलाभयं शुभम् ।
तस्य सम्पूजनात्तेन प्राप्तं ब्रह्मत्वमुत्तमम् ।
इन्द्रनीलमयं लिङ्गं विष्णुरर्चयते सदा ।
विष्णुत्वं प्राप्तावांस्तेन सोऽमृद्भूतैकशासनः ।
स्फटिकं निर्मलं लिङ्गं वरुणोऽर्चयते सदा ।
तेन तद्वरुणत्वं हि प्राप्तमूर्जबलान्वितम् ।। १५ ।।

शिवधर्म पुराण में उक्त है कि ब्रह्मा प्रतिदिन शिलामय लिंगार्चन करते हैं । उससे ही उन्हें ब्रह्मत्व मिला है । विष्णु सदा इन्द्रनीलमणि निर्मित शिव-लिंग की पूजा करते हैं । उसी के फल से उन्हें विष्णुत्व मिला है । वरुणदेव स्फटिक निर्मित शिवलिंग का पूजन करके वरुणत्व प्राप्त करते हैं ।। १५ ।।

तथाह लिङ्गपुराणे—

मणिमुक्ताप्रवालैश्च रत्नैरप्यर्चनं मतम् ।
न गृह्णामि बिना देवि बिल्वपत्रैर्वरानने ।। १६ ।।

लिंग पुराण में महादेव कथन है कि मणि, मुक्ता तथा अन्य रत्नादि द्वारा अर्चना करने पर भी बिना बिल्वपत्र के मैं उसे ग्रहण नहीं करता ।। १६ ।।

अपि च मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

लिङ्गद्वयं तथा नार्च्यं गणेशद्वयमेव च ।
शक्तिद्वयं तथा सूर्यद्वयमेकत्र नार्चयेत् ।
द्वे चक्रे द्वारकायान्तु शालग्रामशिलाद्वयम् ।
एतेषामर्चनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयात् गृही ।। १७ ।।

मन्त्र तन्त्र प्रकाश का मत है कि दो लिंग, दो गणेश, दो शक्ति तथा

दो सूर्य की एक साथ पूजा नहीं करनी चाहिए। दो चक्र तथा दो शालग्राम का एक साथ पूजन न करे। ऐसा करने से गृहस्थ को सदा उद्वेग प्राप्त होता है ।। १७ ।।

अथ शिवपूजाविधानम्

मृदाहरणसङ्घट्टं प्रतिष्ठाह्वानमेव च।
स्नपनं पूजनञ्चैव विसर्जनमिति क्रमात्।
हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्।
पशुपतिः शिवश्चैव महादेव इति क्रमात् ।। १८ ।।

अब शिवलिंग पूजन विधि कहते हैं— 'ॐ हराय नमः' मन्त्र से मृत्तिका लाये। 'ॐ महेश्वराय नमः' मन्त्र से लिंग गठन करे। 'ॐ शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भव' मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए। 'ॐ पिनाकधृक् इहागच्छ इहागच्छ, इह तिष्ठ तिष्ठ अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण' मन्त्र से आवाहन करे। 'ॐ पशुपतये नमः' से स्नान कराये। 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र से पूजन तथा 'ॐ महादेव क्षमस्व' मन्त्र से विसर्जन करे ।। १८ ।।

तथा अग्निपुराणे—

बिना भस्मत्रिपुण्ड्रेण बिना रुद्राक्षमालया।
बिना मालूरपत्रेण शिवपूजा वृथाभवेत्।
पूजितोऽपि महारुद्रो न स्यात्तस्य फलप्रदः ।। १९ ।।

अग्निपुराण का मत है कि भस्म, त्रिपुण्ड, रुद्राक्षमाला तथा बिल्वपत्र के बिना शिवपूजा निष्फल होती है ।। १९ ।।

तथा च शैवागमे—

उदर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा कृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्।
शिवपूजाविधौ मन्त्री त्रिपुण्ड्रमपि धारयेत्।
अग्निहोत्रभवं भस्म शैवमन्त्रभवन्तु वा।
शूद्रस्तु तेन मन्त्रेण भस्मान्यपि च धारयेत्।
न प्राचीमग्रतः शम्भोर्नोदीचीं शक्तिसंयुतः।
न प्रतीचीं यतः पश्चादतो दक्षं समाश्रयेत्।
शर्वो भवश्च रुद्रश्च तथैवोग्रः स्मृतः पुनः।
भीमः पशुपतिश्चैव यजमानस्तथैव च।
ईशानः सूर्य इति च महादेवस्तु सोमकः।
मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः शिवसन्निधिकारिकाः।

लिङ्गपुराणे--

मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः।
आग्नेयान्ताः प्रपूज्याश्च वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत् ॥ २० ॥

शैवागम का कथन है कि ऊर्ध्वपुण्ड्र अथवा त्रिपुण्ड्र लगाकर संध्या करना चाहिए। शिवपूजन के समय त्रिपुण्ड्र आवश्यक है। अग्निहोत्र जनित भस्म अथवा शिवमन्त्र से आहुति जनित भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करे। शूद्र भी पूर्वोक्त मन्त्र से भस्म धारण कर के पूजन करे। महादेव के लिए पूर्वदिशा तथा शक्ति देवता के लिए उत्तरदिशा सम्मुख भाग है एवं पश्चिमदिशा पश्चात् भाग है। अतः शूद्र को दक्षिण दिशा की ओर बैठकर (मुँह करके) पूजनादि करना चाहिए। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव ये हैं शिव की अष्टमूर्तियाँ। इनका पूजन करने से शिव का सान्निध्य प्राप्त होता है। लिंगपुराण का मत है कि पूर्वदिक् से प्रारम्भ कर के अग्निकोण पर्यन्त की आठ दिशाओं में क्रमशः शिव की एक-एक मूर्त्ति की पूजा करे ॥ २० ॥

अथ लिङ्गमुद्रा यथा

दक्षाङ्गुष्ठं समुद्गम्य वामाङ्गुष्ठेन वेष्टयेत्।
अङ्गुलीभिर्निपीड्यचैव शिवस्याग्रे प्रचालयेत्।
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ॥ २१ ॥

अब लिंगमुद्रा कहते हैं। दक्षिण हाथ के अंगूठे को वामहस्त के अंगुष्ठ से लपेटे। वामहस्त की उँगलियों से उन्हें दबाये। इसे शिवमूर्ति या शिवलिंग के सम्मुख प्रदर्शित करे। यह लिंगमुद्रा शिव सान्निध्य करने वाली है ॥ २१ ॥

अथ मुखवाद्यफलमाह

भूमिदानेन यत् पुण्यं कन्यादानेन यत् फलम्।
मुखवाद्येन तत् पुण्यमुभयं लभते नरः।
तदेव पुण्यं गीतस्य नृत्यस्य च विशेषतः।
तत्रैव—

सहस्रमर्च्चयेल्लिङ्गं निरयं स न पश्यति।
शिवदेहमवाप्नोति भुक्त्वा भोगाननुत्तमान्।
लक्षं सम्पूजयेद् यस्तु शिवत्वं लभते ध्रुवम्।
आयुरारोग्यसम्पत्तियुक्तान् पुत्रानवाप्नुयात्।
अयत्नेन लभेत् पुत्रान् सर्वोत्कृष्टगुणान्वितान्।
लक्षैर्दशभिरिन्द्रत्वं ब्रह्मत्वं विंशतिः स्मृतम्।
रुद्रत्वन्तु चतुर्भिस्तु कोटया च शिवतां व्रजेत् ॥ २२ ॥

अब मुखवाद्य फल कहा जाता है—भूमिदान से जो फल मिलता है तथा कन्यादान का जो फल है, दोनों का मिश्रित फल मात्र एक बार मुखवाद्य करने से साधक को प्राप्त होता है और शिव के समीप गायन एवं नृत्य करने से भी वही फल मिलता है। जो व्यक्ति सहस्रबार लिंग की सम्यक् अर्चना करता है, वह नरक में कभी जाता ही नहीं। वह जीवनकाल में उत्तमोत्तम भोगवस्तु का उपभोग करके अन्त में शिवत्व प्राप्त करता है। जो साधक लक्ष संख्यक शिवलिंगार्चन करते हैं, वे मृत्यु के बाद शिवलोक को प्राप्त करते हैं एवं जीवनकाल में बिना प्रयत्न आयु, आरोग्य तथा सम्पत्तियुक्त हो सर्वोत्कृष्ट गुणयुक्त पुत्र प्राप्त करते हैं। दश लक्ष शिवलिंगार्चन से इन्द्रत्व, बीस लक्ष शिवलिंगार्चन से ब्रह्मत्व एवं चार करोड़ शिवलिंगार्चन से रुद्रत्व प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

अथ लिङ्गस्तवं भविष्यपुराणे

सर्वज्ञानप्रविज्ञानप्रदायैकमहात्मने ।
नमस्ते सर्वदेवेश सर्वभूतहितेरत ।
अनन्तभोगसम्पन्न अनन्तासनसंस्थित ।
अनन्तकान्तिसम्भोग परमेश नमोऽस्तु ते ।
अनन्तकान्तिसम्पन्न अनन्तज्ञानसम्भव ।
परापरपरातीत उत्पत्तिस्थितिकारक ।
सर्वार्थसाधनोपाय विश्वेश्वर नमोऽस्तु ते ।
सर्वार्थनिर्मलाभोग सर्वव्याधिविनाशन ।
योगियोगि महायोगि योगीश्वर नमोऽस्तु ते ।
कृत्वा लिङ्गप्रतिष्ठाञ्च ध्यात्वा देवं सदाशिवम् ।
पूजयित्वा विधानेन स्तवमेतदुदीरयेत् ।
लिङ्गस्तवं महापुण्यं यः श्रृणोति सदा नरः ।
नोत्पद्यते च संसारे स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ।
पापकञ्चुकनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २३ ॥
इति भविष्यपुराणे लिङ्गस्तवः समाप्तः ।

भविष्यपुराणोक्त लिंगस्तव इस प्रकार है—हे देवदेव ! आप समस्त ज्ञान-विज्ञान दाता हैं। आपको नमस्कार करता हूँ। हे सर्वदेवेश्वर ! अनन्त आसन पर संस्थित हैं। आप अनन्त अंगकान्ति युक्त हैं, आप अनन्त भोगयुक्त परमेश्वर हैं। आपको नमस्कार ! हे परापर ! आप परातीत, सृष्टि हितकारी तथा सर्वसाधनोपाय हैं। हे विश्वेश्वर ! आपको नमस्कार है ! आप सर्वार्थ निर्मल भोगवान्, सर्वव्याधिविनाशक, योगी तथा योगीश्वर हैं। आपको नमस्कार !

लिंगप्रतिष्ठा करके शिव का ध्यान करते हुए विधान के अनुरूप शिवपूजा के अनन्तर यह पाठ करना चाहिए। इसका पाठ करने से महान् पुण्य प्राप्त होता है। जो इस स्तव का पाठ सर्वदा करता है, सुनता है, वह पुनः जन्म नहीं लेता तथा उसे नित्य स्थान में स्थान मिलता है। अतः सर्वप्रयत्न से इसका श्रवण करना चाहिए। इससे पापों से त्राण मिलकर परमपद की प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥

अथ शिवभक्तस्य वर्जनीयानि यथा शिवधर्मोत्तरे

हिंसां परकलत्रञ्च निष्ठुरामनृतां गिरम् ।
स्तेयं केशवनिन्दाञ्च शिवभक्तो विवर्जयेत् ॥ २४ ॥

शिव धर्मोत्तर के अनुसार शिवभक्तगण को हिंसा, परनारी, निष्ठुरता, असत्यवाक्य, चोरी तथा विष्णु की निन्दा से विरत रहना चाहिए ॥ २४ ॥

अथ शिवलिङ्गपूजाप्रयोगः

शुचौ देशे समुपविश्य दर्भपाणिराचान्तः कामनाभेदेन सङ्कल्पं कृत्वा पूजामारभेत्। ॐ हराय नमः इति मृदाहरणं। ॐ महेश्वराय नमः इति संघट्टनं। ॐ शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भव। इति प्राणप्रतिष्ठा। ततो ध्यायेत्—

ॐ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

'ॐ पिनाकधृक् इहागच्छ इहागच्छ; इहतिष्ठ इहतिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्य अत्राधिष्ठानं कुरु, स्थां स्थीं स्थिरोभव मम पूजां गृहाण' इत्यावाहनं कृत्वा ॐ पशुपतये नमः इति स्नपनम्। ॐ नमः शिवाय इति पाद्यादिभिः पूजयेत्। ततो वामावर्त्तेन पिण्डिकायां प्राच्याद्याग्नेय्यान्तं ॐ शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः। ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः। ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः। ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः। ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः। ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः। ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः। ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः। इति गन्धपुष्पादिभिः सम्पूजयेत्। ॐ महादेव क्षमस्व इति विसर्जयेत्। यथाहुः लैङ्गे—

एकीकृत्य च लिङ्गानि दशपञ्चशतानि वा ।
प्रत्येकमथवा देवि बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत् ।

एकं पाशुपतं लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम् ।
शालग्रामशिलामेकां गृहस्थश्चैव पूजयेत् ॥ २५ ॥

अब शिवपूजा कहते हैं—शुद्ध स्थान में बैठकर हाथ में कुश लेकर आचमन करके कामना के अनुरूप संकल्प करके पूजा आरम्भ करे।

मृत्तिका आहरण मन्त्र — ॐ हराय नमः ।
मृत्तिका से लिङ्ग निर्माण मन्त्र — ॐ महेश्वराय नमः ।
प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र — ॐ शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भव ।

तत्पश्चात् कूर्ममुद्रा से अंजलि में पुष्प लेकर 'ध्यायेन्नित्यं' से लेकर 'पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम् ।' तक लिखा श्लोक पढ़ते हुए ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर मानसिक उपचारों से मानसपूजन करके विशेष अर्घ्यस्थापन करके 'ॐ पिनाकधृक्' से लेकर 'मम पूजां गृहाण' पर्यन्त मन्त्र से आवाहन करे।

तत्पश्चात् स्नान मन्त्र — ॐ पशुपतये नमः ।
पाद्य प्रभृति अर्पणार्थं मन्त्र — ॐ नमः शिवाय ।

गन्धपुष्पादि से पूजन मन्त्र अष्टमूर्त्ति पूजा हेतु—

शिवमूर्त्ति शर्व का पूजन पूर्व दिशा में — ॐ शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः ।
शिवमूर्त्ति भव का पूजन ईशानकोण में — ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः ।
शिवमूर्त्ति रुद्र का पूजन उत्तर में — ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः ।
शिवमूर्त्ति उग्र का पूजन वायुकोण में — ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः ।
शिवमूर्त्ति भीम का पूजन पश्चिम में — ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः ।
शिवमूर्त्ति पशुपति का पूजन नैर्ऋत में — ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः ।
शिवमूर्त्ति ईशान का पूजन अग्निकोण में — ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः ।
शिवमूर्त्ति महादेव का पूजन दक्षिण में — ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः ।

विसर्जन मन्त्र—'ॐ महादेव क्षमस्व' द्वारा विसर्जन करे। लिंगपुराण के अनुसार १०, ५ अथवा १०० लिंग एकत्र करके बिल्वपत्र चढ़ाये अथवा उनकी अलग-अलग बिल्वपत्र से मार्जनापूर्वक पूजन करे। गृहस्थव्यक्ति को मात्र १ मृत्तिका अथवा शिलानिर्मित शिवलिंग तथा एक ही शालग्राम का पूजन करना चाहिए ॥ २५ ॥

अथ शिवनिर्माल्यभोजनं यथा शिवरहस्ये

यथा तथा च स्वादूनि शुभानि सुरभीणि च ।
निवेद्य मिष्टपानादि तत्फलानि यथा तथा ।
भक्त्या निवेद्य भुञ्जानः फलमक्षयमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

शिवरहस्य में कहा गया है कि पिष्टक, पानीय तथा पत्र फलादि सुमिष्ट एवं सद्गन्धयुक्त उत्तमोत्तम द्रव्य का महादेव को अर्पित करके उस निर्माल्य भोजन से अक्षय फल प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥

नक्षत्रदोषजन्यज्वरभोगकाल:

नक्षत्रैस्तु ज्वरोऽसाध्य: साध्योऽपि स चिकित्सित: ।
रिष्टिर्हारीतिनिर्दिष्टा सा चात्र लिख्यते मया ।
जन्माधाने च निधने प्रत्यरौ च विपद्गते ।
यदि व्याधि: समुत्पन्न: क्लेशाय मरणाय वा ।
ज्योतिश्चक्रे धनिष्ठादिनक्षत्राणां विचेष्टितम् ।
दशरात्रं धनिष्ठासु ज्वरो भवति देहिनाम् ।
षड्रात्रं वा दशाहं वा भवेत् शतभिषाज्वर: ।
तथा भाद्रपदास्वेतत् पूर्वासु मरणं ध्रुवम् ।
उत्तरासु भवेन्मोक्षो दिवसेऽर्द्धचतुर्दशे ।
षड्रात्रं पञ्चरात्रं वा रेवत्यां वर्त्तते ज्वर: ।
अश्विन्यामपि षड्रात्रात् सुख सम्पद्यते ध्रुवम् ।
भरण्याञ्च यमस्तिष्ठेत् मरणं पञ्चमेऽहनि ।
कृत्तिकायां गृहीतस्य सप्तरात्रं भवेज्वर: ।
न मुञ्चेद् यदि सप्ताहादेकविंशतिमे सुखम् ।
रोहिण्यामष्टरात्रेण सुखमेकादशे हि वा ।
मृगशीर्षे ज्वरोऽप्येतन्नवरात्रमथापि वा ।
आर्द्रायामुपसृष्टस्य पञ्चाहान्मृत्युमादिशेत् ।
ऊर्ध्वं यद्यपि वर्त्तेत त्रिपक्षान्मृत्युमादिशेत् ।
पुनर्वसूपसृष्टस्य ज्वरेण परिपीडितम् ।
त्रयोदशाहतो मुञ्चेत् सप्तविंशेऽथवाऽहनि ।
पुष्ये त्रिरात्रं ज्वरितं सप्ताहान्नातिवर्तते ।
आश्लेषायां भवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमादपि ।
मघायां द्वादशाहेन मृत्युर्भवति देहिनाम् ।
ऊर्ध्वन्ततो मघायान्तु पुनरेव सुखी नर: ।
पूर्वासु चोपसृष्टस्य फाल्गुनीषु भवेद् यम: ।
उत्तरासु तथाष्टाहं नवरात्रमथापि वा ।
एकविंशतिरात्राद्वा ज्वरशान्ति समृच्छति ।
हस्तेषु सप्तमे मोक्षश्चित्रायामष्टमेऽह्नि च ।
ऊर्ध्वं वियुज्यमानोऽसौ मुञ्चेच्चित्रागमे पुन: ।
स्वातीयोगे दशाहेन मुञ्चेत् पक्षत्रयेण वा ।
विशाखासु भवेन्मृत्युरेकविंशतिमेऽहनि ।
ज्वरन्तु दिवसानष्टावनुराधासु वर्त्तते ।

अत ऊर्ध्वं न मुक्तस्य नापि तस्य चिकित्सितम् ।
ज्येष्ठायां पञ्चमे मृत्युरूर्ध्वं वा द्वादशे सुखम् ।
मूले चैवोपसृष्टस्य दशरात्रं भवेज्ज्वरः ।
अत ऊर्ध्वं न मुक्तस्य नापि तस्य चिकित्सितम् ।
आषाढायान्तु पूर्वायां नवरात्रात् प्रमुच्यते ।
अत ऊर्ध्वं न मुक्तिस्तु नापि तस्य चिकित्सितम् ।
उत्तराषाढनक्षत्रे मासं क्लिश्यत्यसंशयम् ।
अष्टौ वा नवमासान् वा ततोऽस्य सुखमादिशेत् ।
श्रवणेत्वष्टरात्रं वा क्लिश्यते ज्वरपीडितः ।
एतद्भगवता प्रोक्तं नक्षत्राणां विचेष्टितम् ।
य एनं वेत्ति तत्वेन स राजार्हो भिषग्वरः ॥ २७ ॥

अब नक्षत्रदोष जनित ज्वर भोगकाल कहते हैं। विरुद्ध नक्षत्र में जो ज्वर होता है वह असाध्य है। उसका प्रतिकार प्रायः नहीं होता। किन्तु विशेष चिकित्सा से वह ठीक भी हो जाता है। हारीत ने जिन नक्षत्रों में ज्वर के कारण अरिष्ट होना कहा है, वह इस प्रकार से है—

जन्म नक्षत्र में, सप्तम तारा में, पंचम नक्षत्र में तथा तृतीय नक्षत्र में रोग होने पर उसमें क्लेश अथवा मृत्युप्रद होता है। ज्योतिश्चक्र में धनिष्ठादि क्रम से नक्षत्र-दोष गणना की जाती है। शतभिषा में ज्वर होने पर ६ अथवा १० दिन भोग होता है। पूर्वभाद्रपद में ज्वर होने पर रोगी का मरण निश्चित है। उत्तराभाद्रपद में ज्वर होने पर १ सप्ताह में ठीक हो जाता है। रेवती में उत्पन्न ज्वर ६ रात्र किं वा ५ रात्र रहता है। अश्विनी में हुआ ज्वर ६ रात्रि में ठीक हो जाता है। भरणी नक्षत्र में ज्वर होने पर पंचम रात्रि में रोगी की मृत्यु होती है। कृत्तिका में ज्वर होने पर यदि सात दिनों में ठीक नहीं होता है तब २१ दिनों में ज्वर छूटेगा।

रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर आठवें दिन अथवा ग्यारहवें दिन ठीक होता है। मृगशिरा में ज्वर होने पर ९ रात्रियों में ज्वर की शान्ति होती है। आर्द्रा का ज्वर होने पर पाँचवीं रात्रि को रोगी मर जाता है। यदि पंचरात्रि-पर्यन्त जीवित है तब ३ पक्षों में (४५ दिनों) में मृत्यु होती है। पुनर्वसु नक्षत्र का ज्वर १३ अथवा २७ दिनों में ठीक होता है। पुष्य नक्षत्र का ज्वर ३ अथवा ७ दिनों में निवृत्त होगा। आश्लेषा में ज्वर होने पर दीर्घकाल में रोगी की मृत्यु घटित होती है। जिसे मघानक्षत्र में ज्वर होता है, उसकी मृत्यु १२ दिनों में होती है। यदि वह १२ दिन जीवित रह जाता है, तब पुनः मघानक्षत्र में वह आरोग्य प्राप्त करेगा।

पूर्वाफाल्गुनी में ज्वर होने पर मृत्यु होती है। उत्तराफाल्गुनी में ज्वर

होने पर ८–९ अथवा २१ दिनों में ज्वर शान्ति होती है। हस्त नक्षत्र का ज्वर सात रात्रि में, चित्रा नक्षत्र का ज्वर आठ रात्रियों में ठीक हो जाता है। यदि आठ दिनों में ज्वरमुक्ति नहीं होती, तब पुनः चित्रा नक्षत्र आने पर रोग ठीक हो जाता है। स्वाती नक्षत्र का ज्वर १० अथवा ४५ दिनों में जाता है। विशाखा नक्षत्र में ज्वराक्रान्त होने पर २१ दिनों में मृत्यु हो जाती है। अनुराधानक्षत्र में ज्वर होने पर वह ८ दिन तक रहता है। यदि आठ दिनों में ज्वर मुक्ति नहीं होती, तब उसकी कोई चिकित्सा ही नहीं है। ज्येष्ठा नक्षत्र का ज्वर पाँचवें दिन रोगी को मार देता है। यदि रोगी ५ दिनों तक बच जाय तब १२वें दिन ज्वर मुक्ति हो जाती है। मूलनक्षत्र का ज्वर १० दिनों में मुक्त होता है। यदि १० दिनों में ज्वर-मुक्ति न हो सकी, तब उसकी कोई चिकित्सा ही नहीं है। पूर्वाषाढ़ा में उत्पन्न ज्वर यदि ९ दिनों में ठीक नहीं होता तब उसकी कोई चिकित्सा नहीं है। उत्तराषाढ़ा में ज्वरोत्पत्ति होने पर वह १ माह क्लेश भोगता है एवं ८ या ९ माह में रोग मुक्त होता है। श्रवण नक्षत्र में ज्वर होने पर ८ रात्रि पर्यन्त क्लेश भोगने के उपरान्त ज्वर मुक्ति होती है। इस प्रकार भगवान् ने कहा है। जो इस विवरण को जानते हैं, वे ही यथार्थ राजवैद्य हैं॥ २७॥

उन्नीसवाँ पटल समाप्त।

विंशं पटलम्

अथ हारीतोक्तज्वरहरणबलिः

ॐ ह्रीं क्लीं ठः ठः भो भो ज्वर श्रृणु श्रृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाहिकं द्वयाहिकं त्र्याहिकं चातुराहिकं साप्ताहिकं मासिकं अर्द्धमासिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहूर्त्तिकं नैमेषिकं अट अट भट भट हुं फट् अमुकस्य ज्वरं हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा ।

ज्वरामयगृहीतस्य मुष्टिभिर्नवभिः कृतः ।
तण्डुलैर्वर्णभेदेन कुर्यात् पुत्तलकं शुभम् ।
तं हरिद्रावलिप्ताङ्गं चतुःपीतध्वजान्वितम् ।
हरिद्रारसपूर्णाभिः पुटकाभिश्चतसृभिः ।
मण्डितं गन्धपुष्पाद्यैरवतार्य विसर्जयेत् ।
एतद्दिनत्रयं कुर्यात् ज्वररोगोपशान्तये ।

इति हारितोक्तज्वरहरणबलिः ।

अब हारीतोक्त ज्वर हरण बलि कहते हैं—उक्त मन्त्र से बलि प्रदान करे । ज्वरग्रस्त व्यक्ति की मुट्ठी से ९ मुट्ठी चावल लेकर बलिपिण्ड पकाये और ज्वरग्रस्त व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत तण्डुल चूर्ण से ज्वर की एक मूर्त्ति बनाकर हल्दी से उसके अंग रंगे उसके चारों ओर हरिद्रा के रंग से रंगे गये ४ पीत ध्वज लगाये और हल्दी के रस से भरा ४ पुट पात्र चारों ओर स्थापित करे । अब इस मूर्त्ति को गन्ध-पुष्प से पूजित करके उक्त तण्डुल की बलि दे । अब इस प्रतिमूर्ति का विसर्जन करे । ऐसा तीन दिन करने से ज्वर की शान्ति हो जाती है ।

अथ पुत्तलकविसर्जनविधिः

ॐ अद्येहेत्यादि अमुकगोत्रस्य अमुकस्य उत्पन्नज्वरक्षयाय तन्नक्षत्राय एष रचितपुत्तलकबलिर्नमः । इत्युत्सृज्य निमज्जयित्वा उत्तरस्यां दिशि पुत्तलकविसर्जनं कर्त्तव्यम् । इति पुत्तलकविसर्जनम् ।

ॐ से नमः पर्यन्त मन्त्र पढ़ते हुए ज्वरमूर्त्ति को उत्तर दिशा की ओर विसर्जित करे ।

अथ वशीकरणम्

अथ वक्ष्यामि मन्त्राभ्यां वशीकरणमुत्तमम् ।
येन विज्ञातमात्रेण वशीकुर्यान्नरं स्त्रियः ।

कृताञ्जलिः शिखिशिखाबिभीतगिरिकर्णिका ।
चाण्डलीसहिताः पिष्ट्वा पट्टे क्षीरपरिप्लुता ।
तेन संलिप्य पङ्केन पट्टवस्त्रस्य वर्त्तिकाम् ।
कारयित्वोर्णसूत्रेण पूर्णगर्भां सुसुक्षिताम् ।
एकवर्णाधेनुदुग्धकृताज्यदीपपूरिताम् ।
कज्जलं ऋजुके कार्यं कज्जलं नरसङ्कुले ।
सम्पूज्य भैरवं देवं चतुर्द्दश्यां निशागमे ।
कज्जलं पातितं ग्राह्यं तेन वश्यं जगद्भवेत् ।
नरश्च वनिताञ्चैव यमिच्छति नरोत्तमम् ।
अतः परतरं वश्यं न भूतं न भविष्यति ।
भाषितं भैरवे तन्त्रे गोपनीयं प्रयत्नतः ।
क्रूरे च चुम्बके दुष्टे निन्दके चपलेष्वपि ।
अस्य वश्यप्रभावं हि वर्णितुं न च शक्यते ।
देवदेवेन देवेभ्यो वशीकरणमुत्तमम् ।
एतद्योगप्रभावेण ब्रह्माद्या मुनयः सुराः ॥ १ ॥

अब वशीकरण पद्धति कहते हैं—इस प्रक्रिया के जानने से नर तथा नारी वशीभूत हो जाते हैं। लज्जालु की लता, अपामार्ग की जटा, बहेड़ा, अपराजिता तथा चाण्डालीलता को दूध के साथ पीसकर कीचड़ ऐसा करे। यह दूध एक ही रंग की गाय का हो। इस कीचड़ को एक पट्टवस्त्र पर लेपन करके उससे एक बत्ती बनाये। इस बत्ती को पद्मनाभ (मकड़ी) के सूत्र द्वारा लपेट कर रखना चाहिए। अब एक ही रंग की गाय के दूध से घृत निकालकर उससे इस बत्ती को लपेटे। इस बत्ती को जलाकर चतुर्दशी की रात्रि में भैरव का पूजन करके ही काजल निकालना चाहिए। इस काजल से किसी को भी वशीभूत किया जा सकता है। इस प्रकार की वशीकरण प्रणाली भूत-भविष्य में कहीं है ही नहीं। इसे भैरवतन्त्र में कहा गया है। अतः इसे गोपनीय रखना चाहिए। इसके प्रभाव को नहीं कहा जा सकता। क्रूर, अल्पविद्यायुक्त, निन्दक तथा चपल के समक्ष इसके प्रभाव का वर्णन करना वर्जित है। महादेव ने ब्रह्मा आदि देवताओं को इस उत्तम वशीकरण विधि को बतलाया था ॥ १ ॥

अन्यां वक्ष्ये महाविद्यां मोहिनीं वश्यकारिणीम् ।
यस्याः प्रभावमात्रेण वशीकुर्याज्जनं नरः ।
तारं प्रथममुद्धृत्य मायाबीजमनन्तरम् ।
मोहिनीपदमादाय शेषे पावकवल्लभाम् ।

ज्ञात्वा मन्त्रमिमं मन्त्री मन्त्रं पठति सिद्धिदम् ।
अनेन मन्त्रराजेन संस्पृश्य जापितं यदा ।
दीयते च जलं पुष्पं दुकूलमुत्तमं फलम् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पाणौ यस्य प्रदीयते ।
ते सर्वे वशमायान्ति नात्र कार्या विचारणा ।। २ ।।

अब अन्य प्रकार का वशीकरण कहा जाता है। इसके प्रभाव से तीनों लोक वश में हो जाते हैं। साधक को 'ॐ ह्रीं मोहिनी स्वाहा' का जप करना चाहिए। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर चन्दन, पुष्प, वस्त्र अथवा कोई उत्तम फल इस मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित करके जिसे भी दिया जायेगा, वह निश्चित रूप से वशीभूत होगा ।। २ ।।

तारं चिटिद्वयं पश्चाच्चाण्डालीं तदनन्तरम् ।
महापदाभ्यां तां ब्रूयादमुकं मे ततः परम् ।
वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्र उदाहृतः ।
सप्तभिर्दिवसैर्भूयाद् वशयेद्विधिनामुना ।
विलिख्य तालपत्रे तत् साध्यनामविगर्भितम् ।
निक्षिप्य क्षीरसंमिश्रे जले तत् क्वाथयेन्निशि ।
वश्यो भवति साध्यस्तु नात्र कार्या विचारणा ।। ३ ।।

'ॐ चिटि चिटि चाण्डाली महाचाण्डाली अमुकं मे वशमानय स्वाहा'।

(अमुक के स्थान पर उसका नाम लगाये जिसे वशीभूत करना हो)।

इस मन्त्र का सात दिन जप करने से राजा भी वशीभूत हो जाता है और इस मन्त्र को तालपत्र पर लिखकर दूध से मिश्रित जल में पकाकर काढ़ा जैसा बनाना चाहिए। इसमें जिसका भी नाम मन्त्र के साथ पढ़ा जायेगा वह वशीभूत होगा। मतान्तर से उक्त मन्त्र बेल के काँटे से तालपत्र पर लिखे और उसे दूध में पकाये। उसी में तीन दिन तालपत्र को रहने देना चाहिए। तीन दिन के पश्चात् उस तालपत्र को निकालकर दुर्गोत्सव मण्डप के द्वार पर गाड़ने से वशीकरण हो जाता है ।। ३ ।।

तालपत्रे लिखित्वेनं भद्रकालीगृहे खनेत् ।
वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः ।। ४ ।।

उक्त मन्त्र को तालपत्र पर लिखकर भद्रकाली की पूजा करके उनके मन्दिर के दरवाजे पर गाड़ देने से समस्त प्राणी वशीभूत हो जाते हैं ।। ४ ।।

मूर्ध्नि भाले कामकलाः पतन्ति बिन्दुधारणात् ।
योनिमुद्राप्रयोगेण करोति वशगं जगत् ।। ५ ।।

मस्तक तथा कपाल में कामकला मन्त्र जप कर बिन्दु धारणपूर्वक योनि मुद्रा का प्रयोग करने से तीनों लोक वशीभूत हो जाता है ॥ ५ ॥

रेफहुंकारयोर्मध्ये सर्वलोकं ततः परम् ।
वशमानय ठद्वन्द्वं पूजां जपश्च साधकैः ॥ ६ ॥

'रं सर्वलोकं वशमानय स्वाहा हुं ठः ठः' मन्त्र जप तथा उक्त मन्त्र से पूजन करने पर वांछित व्यक्ति वशीभूत हो जाता है ॥ ६ ॥

राजमुखिपदाद्राजाभिमुखि वश्यपूर्वमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं वश्यं कुरु ठः ठः प्रणवादिरयं मन्त्रः श्रीवश्यः सम्पदावहः ।

मायाहृदोरथान्ते च ब्रह्मश्रीराजिते ततः ।
प्रोक्त्वा राजपूजितेऽर्णान् जये च विजयेऽपि च ।
त्वं गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करीति च ।

सर्वलोकवशङ्करि च सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुदुर्घोराक्षराणि विसर्पतः । मायाद्विठान्तको मनुरेकाधिकषष्टिवर्णकः प्रोक्तः । मन्त्रो यथा--

ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुदुर्धोरे ह्रीं स्वाहा । अयुतं प्रजपेत् ।

पयोभिश्च दशांशेन जुहुयाद् घृतसम्प्लुतैः । आराधयेत् तत्तदङ्गैर्मातृभिर्दिशोधिपैर्निशितमनाः । तिलतण्डुलकैर्लोमैः स्वादुयुक्तैः फलैश्च मधुरतरैः पायसैर्दशांशेन ।

आराधयेत् तदङ्गैर्म्मातृभिर्दिशोधिपैर्निशितमनाः । तिलतण्डुलकैर्लोमैः स्वादुयुक्तैः फलैश्च मधुरतरैः । आज्यैर्वरुणकुवलयैस्त्रिदिनं हवनं क्रियासु वशङ्करी । नित्यमादित्यगतां देवीं प्रतिपद्य तन्मुखे जप्यते । अष्टोत्तरशतमकस्माद्वशीकरोत्यचिरात् । वर्णादिर्वाङ्मन्त्री प्रयोजयेत् । साधनामकर्मयुतं प्रजपेद् वाहवनविधौ वाञ्छितार्थसिद्धिप्रदस्तदा मन्त्रः । ऋषिरस्याजोनिवृट्छन्दो गौरी च देवता प्रोक्ता । स चतुर्दशभिस्ततो दशभिरष्टभि स्ततोऽष्टभिर्दशभिर्मन्त्राक्षरैः क्रमादुच्यते षडङ्गविधिः ।

ध्यानम्--

अमलशशिविराजन्मौलिराबद्धपाशाङ्कुशरुचिरकराब्जा बन्धुजीवारुणाङ्गी । अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणवर्णांशुककुसुमयुता स्यात् सम्पदे पार्वती वः ॥ ७ ॥

'ॐ राजमुखि राजाभिमुखि वश्यापूर्वमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि

महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं वश्यं कुरु ठः ठः' इस मन्त्र तथा 'ह्लीं' नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि । सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुदुर्घोरे ह्लीं स्वाहा' का दस हजार जप करे।

तदनन्तर जप की दशांश (१०००) संख्या में आहुति देनी चाहिए। घृत मिश्रित पायस द्वारा हवन करे।

हवन के अनन्तर अंगदेवता, अष्टमातृका तथा दसों दिक्पालों का पूजन करके पुनः स्वादु युक्त तिल, तण्डुल, मोम, मधुर फल तथा घृतयुक्त लाल कमल द्वारा होम करे। इस प्रकार से तीन दिन हवन करके सूर्यमण्डल की अधिष्ठात्री देवता की आराधना करके पूर्व की ओर मुख करके १०८ बार जप करे। इससे अत्यन्त थोड़े समय में वशीकरण सिद्ध हो जाता है। यन्त्र में उस व्यक्ति का नाम अंकित करे, जिसका वशीकरण करना है। यन्त्र को सम्मुख रखकर जप तथा होम करने से सिद्धि मिल जाती है। इस मन्त्र के ऋषि अज हैं। छन्द है निवृत् तथा गौरी देवता है। कराङ्गन्यास यह है—

ह्लीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
जये विजये गौरि गान्धारि तर्जनीभ्यां स्वाहा।
त्रिभुवनवशङ्करि मध्यमाभ्यां वषट्।
सर्वलोकवशङ्करि अनामिकाभ्यां हुं।
सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
सुदुर्घोरे सुदुर्घोरे ह्लीं स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

तदनन्तर हृदयादि न्यास करे और देवता का ध्यान इस प्रकार करे—

अमलशशिविराजन्मौलिराबद्धपाशाङ्कुशरुचिरकराब्जाबन्धुजीवारुणाङ्गी। अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणवर्णांशुककुसुमयुता स्यात् सम्पदे पार्वती वः' ॥ ७ ॥

मदमदपदमादौ युग्मवारं पठेच्चेत्।
तदनु च पठनीयं ह्लीं पदं तत्र पश्चात् ॥
वशय पदयुता स्यात् नामरूपादिसंज्ञः।
भवति मदनमन्त्रः स्वाहया संयुतोऽयम् ॥
कनकरचितमूर्त्तिः कुण्डलाकृष्टचापो।
युवतिहृदयमध्ये निश्चलारोपिताक्षः ॥
इति मनसि मनोजं चिन्तयन् यो जपस्थो।
वशयति स समस्तं भूतलं मन्त्रसिद्धिः ॥

शतशतपरिजापात् स्यादयं सिद्धिदाता।
दशशतकुसुमानां लोहितानाञ्च दानात्॥
इह तु सकलकार्यं वामहस्तेन कुर्यात्।
उपदिशति समस्तं ज्यौतिरीशः समन्तात्॥ ८॥

मद मद ह्लीं वशय अमुकं स्वाहा। यह मदन मन्त्र है। मदन की आकृति इस प्रकार से है—

उनका शरीर सुवर्ण के समान है। उनका ध्यान 'कनकरचितमूर्त्तिः' से लेकर 'निश्चलोरोपिताक्षः' पर्यन्त श्लोक ८ में अंकित है। जो व्यक्ति इस प्रकार से मदन का ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र का १००० जप करते हैं, वे समस्त भूतल को वशीभूत कर लेते हैं। उन्हें मन्त्र सिद्धि प्राप्त होती है। जप करने के अनन्तर एक हजार रक्तवर्ण पुष्प अर्पण करना चाहिए। इस प्रक्रिया में समस्त कार्य बायें हाथ से किया जाता है॥ ८॥

चामुण्डे प्रथमं जयेति कथितं सम्बोधने मोहय
ज्ञातव्यं वशमानयेत्यपि पदं साध्यं द्वितीयान्वितम्।
स्वाहान्तं प्रणवादिरेष कथितैस्तत्वैर्महामोहनी
यन्मन्त्रः कविरात्मसेवितपदोनास्माद्द्वितीयोत्तरी॥

ध्यानम्—

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटा सुवदना सान्द्रान्धकारे स्थिता
खट्वाङ्गासिनिगूढदक्षिणकरा वामेन पाशं शिरः।
श्यामा पिङ्गलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता
चामुण्डा शववाहिनी जपविधौ ध्येया सदा साधकैः॥

लक्षं जप्त्वा दशांशं शुकतरुकुसुमैर्वह्निमध्ये होमः। एवं विधिना सिद्धिं ददाति।

'ॐ चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानय अमुकं स्वाहा'॥ ९॥

यह मन्त्र एक लाख बार जप कर शिरीष वृक्ष की लकड़ी जलाकर इसी मन्त्र से दस हजार हवन करना चाहिए। देवता का ध्यान—'दंष्ट्राकोटि-विशङ्कटा' से लेकर 'ध्येया सदा साधकैः' पर्यन्त ध्यान अंकित है। विधिपूर्वक देवपूजन करके एक लक्ष जप करके शिरीष के १०००० पुष्पों द्वारा हवन करने से मन्त्र सिद्धि होती है। इससे वशीकरण सिद्ध हो जाता है॥ ९॥

'ॐ नमः कामाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वालय प्रज्वालय सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा'।

एतन्मन्त्रजपादेव वशीभवति मानवः॥ १०॥

ऊपर लिखें मन्त्र का जप करने पर वशीकरण हो जाता है॥ १०॥

'ॐ नमो भगवति सूचिचाण्डालिनि नमः स्वाहा'। एतन्मत्रेण मधुच्छिष्टस्य पुत्तलिकां कृताञ्जलिं कृतयुगपादं अङ्गप्रत्यङ्गसहितं कृत्वा तत्र साध्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा एतन्मन्त्रं जपन् अङ्गारेषु पुत्तलिकां प्रतापयेत्। ततः साध्योवश्यो भवति ।। ११ ।।

'ॐ नमो भगवति सूचिचाण्डालिनि नमः स्वाहा'।

मन्त्र से मोम द्वारा अभिलषित व्यक्ति की प्रतिमूर्त्ति बनाना चाहिए। इस प्रतिमूर्त्ति को कृतांजलि धारण किये हुए दो हाथ, पैर तथा उसके अंग प्रत्यंग भी बने होने चाहिए। इस प्रतिमा में उस व्यक्ति की प्राणप्रतिष्ठा भी करनी चाहिए। तदनन्तर उक्त मन्त्र को पढ़ते हुए इस प्रतिमूर्त्ति को अंगारों में तपाना होगा। इससे वह व्यक्ति वशीभूत हो जाता है ।। ११ ।।

बीसवाँ पटल समाप्त।

एकविंशं पटलम्

अथ स्तम्भनं

श्रीदेव्युवाच

प्रभो त्वं भैरवश्रेष्ठः सर्वमन्त्रार्थजीवकः।
नानारहस्यसारश्च त्वदृते न श्रृणोम्यहम्।
दिव्यतन्त्रं महातन्त्रं पूर्वपश्चिमसंज्ञकम्।
दक्षिणोत्तरमूर्द्धञ्च ह्युपायाः कथिताः प्रभो।
वश्याकर्षणदिव्यञ्च मारणोच्चाटनादिकम्।
विद्वेषं मोहनं चान्यं विविधं कामनादिकम्।
विस्तारं कथितं पूर्वं ज्ञातव्यं सर्वसंज्ञया।
इदानीं स्तम्भनं देव कथयस्व प्रसादतः।
कथयस्व सुरश्रेष्ठ यद्यहं तव वल्लभा॥ १॥

अब स्तम्भन प्रक्रिया कहते हैं। भगवती महादेव से पूछती हैं—हे प्रभो ! आप भैरव श्रेष्ठ तथा सर्व मन्त्र प्रवर्त्तक हैं। आपसे मैं विभिन्न विषयों का रहस्य नहीं सुन सकी। अन्य पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण संज्ञा से युक्त दिव्य-तन्त्र, महातन्त्र, वशीकरण, आकर्षण, मारण, उच्चाटन, विद्वेषण तथा मोहनादि विविध कामना साधक तन्त्रों को पहले कह चुके हैं। अब मुझसे अनुग्रह करके स्तम्भन विधान कहिये॥ १॥

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु त्वया प्राज्ञे सर्वमन्त्रार्थसाधिके।
न कस्यचिन्मयाख्यातं श्रृणु सुन्दरि यत्नतः।
गुह्याद् गुह्यतरं देवि स्नेहात्ते प्रकटीकृतम्।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि श्रृणु चैकाग्रमानसा।
विद्या वा परमा गुप्ता महास्तम्भनरूपिणी॥ २॥

महादेव कहते हैं—हे देवी ! तुम अत्यन्त साध्वी तथा सर्वमन्त्रार्थ साधिका हो। तुमने जो जिज्ञासा की है उस विषय का प्रकाशन मैंने आजतक किसी से नहीं किया है। वह तुमसे मैं कहता हूँ, यत्न पूर्वक सुनो। यह प्रक्रिया अतिगुप्त है। केवल तुम्हारे स्नेह से बाध्य होकर कहता हूँ॥ २॥

ॐकारं पूर्वमुच्चार्य स्थिरमायामथोच्चरेत्।
सम्बोधनपदं चोक्त्वा ततः श्रीबगलामुखि।

तदग्रे सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम् ।
स्तम्भयेति पदं पश्चात् कीलयेति पदद्वयम् ।
बुद्धिं विनाशय पश्चात् स्थिरमायं पुनर्लिखेत् ।
लिखेच्च पुनरोङ्कारं स्वाहेति पदमुत्तमम् ।
षट्त्रिंशदक्षरा विद्या देवानामपि दुर्लभा ।
वह्निहीनेन्द्रयुङ्माया स्थिरमाया प्रकीर्त्तिता ।
गजस्य च रथानाञ्च विज्ञानं शीघ्रचेतसाम् ।
स्तम्भिताञ्च महावाचं बृहस्पतिमुखोद्गताम् ।
महापर्वतवृक्षाणां सरितां सागरस्य च ।
स्तम्भयेत्तानि दिव्यानि मानुषेषु च का कथा ।
त्रैलोक्यमोहिनी विद्या तस्माच्च बगलामुखी ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विविधं कामनागतम् ।
न्यासं ध्यानं जपं होमं मन्त्रमेव पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥

स्तम्भन कार्य में 'ॐ ह्लीं श्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय कीलय कीलय बुद्धि विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा' मन्त्र से जो ३६ अक्षरों वाला है, बगलादेवी का पूजन करे। यह देवताओं को भी दुर्लभ है। इससे हाथी, रथ तथा शीघ्रगामी बुद्धिमानों की गति स्तम्मित हो जाती है। बृहस्पति के समान वाग्मी व्यक्ति का भी वाक् स्तम्भन हो जाता है और महापर्वत, वृक्ष, नदी तथा सागरादि भी स्तम्भित हो जाते हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या ! बगलामुखी त्रैलोक्य का मोहन करने वाली विद्या है। अब न्यास, ध्यान जप होम के पृथक्-पृथक् मन्त्र कहे जाते हैं ॥ ३ ॥

अङ्गन्यासं प्रवक्ष्यामि कराङ्गविधिपूर्वकम् ।
ॐ स्थिरमायाञ्च हृदये मूर्ध्नि श्रीबगलामुखि ।
शिखायां सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भयेति ।
कवचे कीलय द्वन्द्वं नेत्रे बुद्धिं विनाशय ।
ह्लीं ॐ स्वाहा तथा चास्त्रे षडङ्गविधिरीरितः ।
युग्मकालेषु सप्तर्त्तु दशार्णैश्च मनूद्भवैः ।
करशाखासु तूभयोः कराङ्गन्यासमाचरेत् ।
नारायणऋषिर्मूर्ध्नि त्रिष्टुप्छन्दस्तु तन्मुखे ।
श्रीबगलामुखीं देवीं हृदये विन्यसेत्ततः ।
क्लीं बीजं गुह्यदेशे तु स्वाहाशक्तिश्च पादयोः ।
इष्टार्थे विनियोगस्तु ऋष्यादिन्यास एव च ।
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रुत्योर्गण्डयोर्नसयोः पुनः ।

ओष्ठयोर्मुखगण्डे च दक्षिणांशे च कूर्परे।
तथैव मणिबन्धे च तथा चाङ्गुलिमूलके।
गलमूले दक्षस्तने वामस्तने तथा हृदि।
नाभौ कट्यां गुह्यदेशे वामांसे कूर्परे तथा।
मणिबन्धेऽङ्गुलेर्मूले विन्यसेत्तु समाहितः।
दक्षोरुमूले जानौ च गुल्फे चाङ्गुलिमूलके।
मूलमन्त्राक्षरैर्विद्वान् विन्यसेत् क्रमयोगतः।
एवं न्यासविधिं कृत्वा ततो ध्यानं शृणु प्रिये ।। ४ ।।

अब अंगन्यास-करन्यास कहा जाता है।

अंगन्यासः

ॐ ह्लीं हृदयाय नमः। श्रीबगलामुखि शिरसे स्वाहा। सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्। वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुम्। कीलय कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्। बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्।

करन्यासः

ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। श्रीबगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा। सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्। वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुम्। कीलय कीलय कनिष्ठाभ्यां वौषट्। बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

ऋष्यादिन्यासः

अस्य श्रीबगलामुखिमन्त्रस्य नारायणऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः श्रीबगलामुखिदेवता क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः इष्टार्थसिद्धये विनियोगः।

शिरसि—नारायणऋषये नमः। मुखे—त्रिष्टुप्छन्दसे नमः। हृदये—श्रीबगलामुखिदेवतायै नमः। गुह्ये—क्लीं बीजाय नमः। पादयोः—स्वाहा शक्तये नमः।

मन्त्रवर्णन्यासः

मस्तके—ॐ नमः। मुखे—ह्लीं नमः। चक्षुर्द्वये—श्रीं नमः। वं नमः। कर्णद्वये—गं नमः। लां नमः। गण्डद्वये—मुं नमः। खिं नमः। नासिकाद्वये—सं नमः। वं नमः। कर्णद्वये—दुं नमः। ष्टां नमः। मुखे—नां नमः। गण्डद्वये—वां नमः। चं नमः। दक्षिणांसे—मुं नमः। वामांसे—खं नमः। कूर्परे—स्तं नमः। मणिबन्धे—म्भं नमः। अंगुलिमूले—यं नमः। गण्डमूलद्वये—कीं नमः। हृदये—लं नमः। दक्षस्तने—

यं नमः । वामस्तने—कीं नमः । हृदये—लं नमः । नाभौ—यं नमः । कटिदेशे—बुं नमः । गुह्यदेशे—द्धिं नमः । वामांसे – विं नमः । कूर्परे – नां नमः । मणिबन्धे—शं नमः । अंगुलिमूले – यं नमः । दक्षोरुमूले—ह्रीं नमः । जानौ—ॐ नमः । गुल्फे—स्वां नमः । वामाङ्गुलिमूले—हां नमः ॥ ४ ॥

ध्यानम्

गम्भीराञ्च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ।
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वाञ्च वस्त्रकम् ।
पीताम्बरधरां देवीं दृढपीनपयोधराम् ।
हेमकुण्डलभूषाञ्च पीतचन्द्रार्धशेखराम् ।
पीतभूषणभूषाञ्च स्वर्णसिंहासने स्थिताम् ।
एवं ध्यात्वा तु देवेशीं शत्रुस्तम्भनकारिणीम् ।
महाविद्यां महामायां साधकस्य फलप्रदाम् ।
यस्याः स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत् क्षणात् ॥ ५ ॥

देवी का ध्यान इस प्रकार से है—ये गम्भीर आकृति वाली, मदोन्मत्ता, त्रिनयना, सुवर्ण के समान देहकान्तियुता, कमल पुष्प पर आसीन हैं। इनके चार हाथ हैं। दाहिनी ओर के दोनों हाथों में मुद्गर तथा गदा है। बायीं ओर के दोनों हाथों में क्रमशः बैरी की जीभ तथा वज्र है। इनके परिधान का रंग पीत वर्ण है। स्तनद्वय दृढ़ तथा स्थूल हैं। ये हेमकुण्डल से विभूषिता तथा कपाल पर अर्द्धचन्द्र से सुशोभिता हैं। पीतवर्ण के ही भूषण को धारण करके सुवर्ण सिंहासन पर बैठी हैं। इस प्रकार से बगला देवी के स्वरूप का चिन्तन करके तब पूजन करना चाहिए। इससे शत्रुस्तम्भन होता है और इनका स्मरण करने से त्रिभुवन भी स्तम्भित हो जाता है ॥ ५ ॥

साधनं सम्प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ।
सर्वं पीतोपचारेण पीताम्बरधरो नरः ।
जपमालाञ्च देवेशि हरिद्राग्रन्थिसम्भवाम् ।
पीतवस्त्रसमारूढः पीताध्यानपरायणः ।
पीतपुष्पार्चनं नित्यमयुतं जपमाचरेत् ।
दशांशश्च कृतोहोमः पीतद्रव्यैः सुशोधनैः ।
संज्ञामुच्चारयेत् साध्यं स्तम्भनञ्च महाद्भुतम् ।
शृणु प्राज्ञे महागुह्यं प्रकटीकृतसाधनम् ।
एकान्ते निर्जने स्थाने शुचौ देशे गृहे पुरे ॥ ६ ॥

अब साधना प्रणाली कही जाती है। साधक पीतवस्त्र पहनकर पीले आसन पर बैठकर जप करे। पीतवर्ण आसनयुक्त भगवती का ध्यान करके पीले पुष्पों से अर्चना करे। दस हजार जप करके पीत द्रव्य द्वारा दशांश (१०००) आहुति उसी मन्त्र से देना आवश्यक है। निर्जन पवित्र गृह में यह साधना करते समय मन्त्र जप के समय उस मन्त्र में उस व्यक्ति का नाम जोड़ देना चाहिए जिसे स्तम्भित करना है। यह स्तम्भन प्रयोग अत्यन्त आश्चर्यजनक है ॥ ६ ॥

अथ कर्मविशेषे कुण्डलक्षणम्

कुण्डं सुलक्षणं मेखलात्रयशोभितम्।
योनिवृत्तं त्रिमात्रैः स्यात्तत्र होमन्तु साधयेत्।
वश्ये तु चतुरस्रञ्च ह्याकर्षणे त्रिकोणकम्।
तथैवोच्चाटने प्रोक्तं षट्कोणं मारणे स्मृतम् ॥ ७ ॥

तीन मेखलायुक्त सुलक्षण कुण्ड का निर्माण करके उसमें हवन करे। स्तम्भन में त्रिकोण, वशीकरण में चतुरस्र, आकर्षण तथा उच्चाटन में त्रिकोण एवं मारणार्थं षट्कोण कुण्ड बनाना चाहिए ॥ ७ ॥

अथ आसनभेदाः

वश्ये मेषासनं प्रोक्तं कर्षणे व्याघ्रचर्मणि।
शान्तौ मृगासनं प्रोक्तं गोचर्म स्तम्भने स्मृतम्।
उष्ट्रासनं तथोच्चाटे विद्वेषे तुरगासनम्।
मारणे महिषीचर्म मोक्षञ्चैव गजाजिने।
नानाविधानि ते देवि क्रमाद् द्रव्यं समाचरेत् ॥ ८ ॥

हे देवी ! वशीकरण में मेष चर्मासन, आकर्षण में व्याघ्रचर्मासन, शान्ति में मृगासन, स्तम्भन में गोचर्मासन, उच्चाटन में ऊँट के चर्म का आसन, विद्वेषण में घोड़े के चर्म का आसन तथा मोक्षसाधनार्थ हाथी के चर्म का आसन प्रशस्त है ॥ ८ ॥

अथ कर्मविशेषे यज्ञीयसामग्री

मधुलाजतिलाज्येन वश्यलाभानि साधयेत्।
आकर्षणे तथा लोध्रं सतिलं मधुरान्वितम्।
निम्बपत्रञ्च तैलाक्तं विद्वेषणकरं परम्।
हरितालं हरिद्राञ्च लवणेन च संयुतम्।
स्तम्भयेच्चैव देवेशि प्रज्ञाञ्चैव गतिं मतिम्।
वाजिनाथस्य सारेण रुधिरेणैव होमयेत्।
मारणे तु रिपोर्देवि श्मशानाग्नौ हुनेन्निशि।

क्षुद्राणां काकपक्षाणां गृहधूमेन संयुतम् ।
लाजं त्रिमधुसंयुक्तं सर्वरोगप्रशान्तये ॥ ९ ॥

कर्मविशेष में यज्ञ के द्रव्य कहे जा रहे हैं—वशीकरण में मधु-लावा-तिल तथा घृत से होम करना चाहिए। आकर्षण में लोध की लकड़ी तथा शहद युक्त तिल से आहुति देनी चाहिए। विद्वेषण में तैलयुक्त नीम के पत्तों से, स्तम्भन में नमक के साथ हरिताल और हल्दी का होम करे। रोग की शान्ति के लिए कौए के पंखों, गृह धूम, लावा, घृत, मधु तथा शहद मिलाकर हवन किया जाता है ॥ ९ ॥

लक्षमेकं जपेन्मन्त्री ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
पर्वताग्रे महारण्ये सिद्धिः शैवालये गृहे ।
सङ्गमे च महानद्याः साधकः साधयेत् स्वयम् ॥ १० ॥

साधक ब्रह्मचारी भी नियम पालन करते हुए पर्वत के अग्र भाग में, महावन में, शिवमन्दिर में, घर में अथवा महानदी के संगमस्थल (जैसे प्रयाग) में एक लाख मन्त्रों का जप स्वयं करे ॥ १० ॥

श्वेतब्रह्मतरोर्मूले पादुकाञ्चैव रञ्जयेत् ।
अलक्तकेन रागेण रञ्जिता नवमुद्रया ।
षट्त्रिंशदक्षरा विद्या लक्षैकेन च मन्त्रिता ।
शतयोजनमात्रञ्च मनश्चिन्तितमायतम् ॥ ११ ॥

श्वेत पलाश की जड़ की लकड़ी का पादुका बनाकर उसे आलता से रंग देना चाहिए। अब इसे १००००० (एक लाख) बार बगला देवी के श्लोक ३ में लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए। इस पादुका द्वारा चिन्तन मात्र से १०० योजन जाया जा सकता है ॥ ११ ॥

रसं मनःशिला तालं माक्षिकेण समन्वितम् ।
इति मन्त्रं लक्षमेकं सर्वाङ्गे लेपनं कृतम् ।
अदृश्यकारकं देवि लोके च महदद्भुतम् ॥ १२ ॥

पारा, मैनसिल, हरिताल तथा शहद को एक साथ मिलाकर पूर्वोक्त बगला देवी के मन्त्र को एक लाख जपने के उपरान्त लेपन करने से व्यक्ति अदृश्य हो जाता है ॥ १२ ॥

एकवर्णगवाञ्चैव धारोष्णं क्षीरमाहरेत् ।
शर्करामधुसंयुक्तं त्रिशतैर्मन्त्रितं प्रिये ।
पीत्वा च हरते शीघ्रं विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ १३ ॥

एक ही रंग वाली गाय के दूध में मधु एवं शर्करा मिलाकर उक्त मन्त्र का जप कर उसे पीने से स्थावर तथा जंगम विष का नाश हो जाता है ॥१३॥

द्रारिद्रयमोचनं देवि लक्षमेकं जपेन्नरः ।
दशांशेन कृतो होमो द्रव्यैरेभिर्घृताप्लुतैः ।
लक्ष्मीयुक्तो भवेद्देवि दारिद्रयं नाशयेद् ध्रुवम् ।। १४ ।।

पूर्वोक्त मन्त्र का एक लाख जप करके उससे १००० आहुति घृतमिश्रित द्रव्य की देन से दरिद्र पुरुष भी लक्ष्मीवान् हो जाता है और दारिद्रय का नाश निश्चित रूप से हो जाता है ।। १४ ।।

अथान्यप्रकारस्तम्भनम्

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि कामना मन्त्रिकोपरि ।
पत्रे वाप्यथ पाषाणे संज्ञानाम तु कारयेत् ।
आद्यन्ते स्थिरमायाञ्च हरिद्रातालकैर्लिखेत् ।
गर्भस्तम्भकरी देवी चमत्कारकरी परा ।
भूर्जपत्रे समालिख्य तालोन्मत्तरसैर्निशि ।
षट्कोणमध्यमालिख्य विद्यां वलयतो लिखेत् ।
मध्ये संज्ञाञ्च देवेशि पीतसूत्रेण वेष्टयेत् ।
चक्रं भ्राम्यत्कुलालस्य विपरीतञ्च मृत्तिकाम् ।
तन्मध्ये विलिखेद्बीजं त्रिवलीकारतः प्रिये ।
षष्ठयन्तं साध्यनामार्णं मुखं स्तम्भय चोच्यते ।
बाह्ये वेष्टय महाबीजं चतुःसाध्याख्यमालिखेत् ।
साध्यनामाक्षरं देवि अभिमन्त्र्य च विद्यया ।
षष्ठयन्तं चोच्चरेत् साध्यं सम्बोधनञ्च दैवतम् ।
मासुप्तेति पदं पश्चात् वदेदाम्रेडितान्तरम् ।
पीतोपचारैः सम्पूज्य मुखस्तम्भनमीरितम् ।। १५ ।।

अब अन्य प्रकार का स्तम्भन कहा जाता है । कामनानुसार यन्त्र का निर्माण करके स्तम्भन कार्य प्रारम्भ करे । भोजपत्र अथवा पाषाण पर हल्दी तथा हरिताल को पीसकर उससे उस व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए जिसका स्तम्भन करना हो । उस नाम के पहले तथा अन्त में 'ह्रीं' बीज अंकित करना चाहिए । यह विद्या गर्भ-स्तम्भनकारिणी तथा अति चमत्कारी भी है । रात में भोजपत्र पर हरिताल तथा हल्दी के रस से एक त्रिकोण बनाये । उसके बाहर वलयाकृति में मूलमन्त्र लिखे (अर्थात् त्रिकोण के बाहर वलय की आकृति में मूलमन्त्र लिखना होगा) । मध्य में उसका नाम अंकित करना चाहिए जिसका स्तम्भन करना हो । अब इस यन्त्र सहित उस भोजपत्र को पीले धागे से लपेट देना होगा । अब कुम्हार के चक्र (चाक) के नीचे की शुद्ध मिट्टी लाये और उसको जमाकर उसमें बगलामुखी का मन्त्र त्रिवलयाकार

क्रम से लिखनी चाहिए। उसके बाहर की ओर जिसका स्तम्भन करना हो उसके नाम को 'अमुकस्य' के स्थान पर लिखे 'अमुकस्य मुखं स्तम्भय'।

तत्पश्चात् 'अमुकं स्तम्भय बगलामुखि मा सुप्त मा सुप्त' मन्त्र का पुनः-पुनः उच्चारण करे। यहाँ भी अमुकं के स्थान पर उस व्यक्ति का नाम लगाना चाहिए जिसे स्तम्भित करना है। तत्पश्चात् पीतवर्ण के पूजोपकरणों द्वारा पूजन करे। इससे शत्रु का मुखस्तम्भन हो जाता है ॥ १५ ॥

एतन्मन्त्रं वरारोहे श्मशानाङ्गारके लिखेत्।
भेकस्य वदने क्षिप्त्वा पीतसूत्रेण वेष्टयेत्।
भूमिष्ठं मण्डलं कृत्वा पीतपुष्पैः समर्चयेत्।
उच्चारयेत् सर्वमन्त्रपदमुच्चार्य चालय।
वामपादेन सम्पूर्णां कुलालस्य च मृत्तिकाम्।
पूरकस्य प्रयोगेण प्रयोगं प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥

श्मशान के कोयले पर बगलामुखी का पूर्वोक्त मन्त्र लिखकर उसे मेढ़क के मुख में रखकर उस मेढ़क के मुख को पीले धागे से बाँधे। तत्पश्चात् भूमि में गढ़ा खोदकर उसे रक्खे और पीतपुष्प से उसका पूजन करके बगलामुखी मन्त्र का उच्चारण करके चालय चालय का उच्चारण करे। अब उस गढ़े को कुम्हार के चक्र (चाक) के नीचे की मिट्टी से बायें पैर द्वारा भरे। इस प्रयोग से भी कार्य सिद्धि होती है ॥ १६ ॥

अन्योऽन्यं लिखितत्वेन कृतान्नद्धं समन्ततः।
वामदक्षिणसम्बन्धात् द्वौ द्वौ पादौ प्रकल्पयेत्।
नाम साधस्य च शतं गतिश्च स्तम्भयेति च।
पूर्ववत् पदमालिख्य पाषाणस्य च पट्टके।
पूर्ववत् सम्मुखीकृत्य पीतसूत्रेण वेष्टयेत्।
शय्यां पातालसंस्थाञ्च खनेत् खातं प्रयत्नतः।
वामहस्ते न्यसेत् खातं पीतपुष्पेण पूजयेत्।
महदाश्चर्यजनकं गतिस्तम्भनमुत्तमम् ॥ १७ ॥

भोजपत्र अथवा पाषाण पर उस व्यक्ति की प्रतिकृति बनाये जिसे स्तम्भित करना हो। उसके दोनों पैरों पर उस व्यक्ति का नाम अंकित कर देना चाहिए। तत्पश्चात् उसे पीले धागे से लपेटे। तदनन्तर शय्या के नीचे गढ़ा खोदकर उसमें इसे गाड़ देना चाहिए और पीले पुष्प से उसकी पूजा करना चाहिए। इस प्रक्रिया का समस्त कार्य बायें हाथ से करे। इस कार्य से आश्चर्यजनक गति स्तम्भन होता है ॥ १७ ॥

श्मशानेऽथ परिग्राह्यं श्मशानाङ्गारमाहरेत्।

मायाबीजं त्रिधालिख्य साध्यसंज्ञाञ्च मध्यतः ।
अपि मध्ये च ललना सा च त्रिवलयात्मिका ।
वामहस्ते खनेत् खातं खर्परञ्च अधोमुखम् ।
पूरयेद्वामपादेन तम्पुरुषन्तथोपरि ।
स्तम्भनञ्चैव देवेशि रिपूणां मुखबन्धनम् ।। १८ ।।

श्मशान का कोयला लाकर उससे 'ह्लीं' बीज तीन बार लिखकर उसके मध्य में जिस व्यक्ति को स्तम्भित करना हो, उसका नाम लिखे। तदनन्तर बायें हाथ से गढ़ा खोदकर उसमें इस कोयले को उलटा करके रखकर बायें पैर से इस गढ़े को भर देना चाहिए। इससे शत्रु का मुख स्तम्भन होता है ।। १८ ।।

तालपत्रं समादाय लिखेत् साध्यं स्वनामतः ।
आद्यन्ते विलिखेद्बीजं त्रिविधोच्चारकं लिखेत् ।
वामहस्ते पुटं कृत्वा करपीडितकण्टकान् ।
सप्तसंख्यकण्टकानि भित्वा चैकं पुटीकृतम् ।
पृथग्विधं समुच्चार्य नाम साध्यञ्च साधकः ।
भाण्डमध्ये क्षिपेत्तञ्च सौवीरेण च पूजयेत् ।
गतिमतिस्तम्भकरं प्रयोगं प्रत्ययावहम् ।
दिव्यस्तम्भकरी देवि नानागुणमुदीरितम् ।
त्वत्प्रीत्या कथयिष्यामि श्रृणु तत् प्रियमुत्तमम् ।
तत्र स्थाने भवेद्दिव्यं देवालयगृहेऽपि वा ।
तत्रस्थां विलिखेद्विद्यां साधकः साध्यनामतः ।। १९ ।।

एक ताड़ का पत्ता लाकर उस पर उस व्यक्ति का नाम अंकित करे जिसका स्तम्भन करना हो और अन्त में बगला मन्त्र लिखे। तदनन्तर उस पत्ते को बायें हाथ की मुट्ठी में रखकर दबाये। तदनन्तर उसे सात काँटों से बेधकर तीन बार व्यक्ति के नाम को संयोजित करके मन्त्र पढ़े। फिर उसे एक पात्र में रखकर बेर के पुष्प से पूजा करे। इस प्रकार से उस व्यक्ति की गति तथा मति का स्तम्भन हो जाता है। इससे देवता भी स्तम्भित हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को देवस्थान पर करने से त्वरित फल मिलता है ।। १९ ।।

इक्कीसवाँ पटल समाप्त ।

SVB L
S.No.-
Subjec
Liter
Sub. C